हनुमच्चरित्र

लेखक

विद्यावाचस्पति

पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"

हनुमच्चरित्र

लेखक

विद्यावाचस्पति

पं० गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"
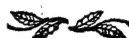
प्रकाशक

पं० रामानुग्रह शर्मा व्यास, धर्मोपदेशक

राम-कार्यालय

पो० लंका, बनारस सिटी

प्रथम संस्करण] सं० १९८७ [मूल्य १)

विक्रेता
राम कार्यालय,
पो० लंका, बनारस सिटी।

मुद्रक
बजरंगबली 'विशारद'
श्रीसीताराम प्रेस, बिसेसरगंज, काशी।

ध्यान दें !
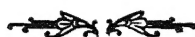
प्रिय प्रेमी सज्जनो,

हमारी बहुत दिनों से यह अभिलाषा थी कि हमारे चिर आराध्य एवं इष्टदेव श्रीबजरंगबली हनूमानजी का जीवनचरित प्राचीन नाना ग्रथों का सारांश लेकर उपादेय प्रकार से लिखा जाय। इस अभिलाषा को मित्रवर पं गणेशदत्त जी ने अपने परिश्रम द्वारा पूरी कर दी और यह ग्रन्थरत्न हमें प्रकाशनार्थ दिया।

इस ग्रन्थ में श्रीहनुमानजी का सांगोपाङ्ग जीवनचरित, श्रीरामभाषित हनुमत्कवच सहित है जिसका पाठ करने से रोग-भय-शोक-सन्ताप का समूल नाश हो जाता है और पाठ करने वाले का घर धन-जन से सम्पन्न होता है। यह सब गुण श्रीरामचन्द्र भगवान ने स्वयं कवच में बतलाये हैं

सो भक्त महाशय देख सकते हैं। इसलिये हमें परम आशा है कि आप इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य अपने पास रखेगें तथा विद्यार्थी और नव-युवकों को खरीद कर पढ़ने की सम्मति देंगे। इससे उनको अपने जीवन-सुधार में पूरी सहायता मिलेगी और साथही हमारा मनोरथ सफल होगा।

निवेदक—

रामानुग्रह शर्मा

समर्पण-पत्रम्

पूज्य पितृदेव !

जब मैं आपकी सेवा योग्य हुआ, तब आपने निर्मोही हो सुरपुर प्रस्थान किया। आपकी सेवा करने का विचार जी-का-जी में रहा और यह मनोभिलाष पूरी न हो सकने का दुःख आज तक मेरे हृदय को व्यथित करता है, परन्तु विवश हूँ।

वर्षों से इस इरादे में था कि कोई कृति आपकी पवित्रस्मृति में समर्पण करूँ, परन्तु आपके योग्य भेंट न होने से चुप रहा। जिसके स्मरण में, जिसके भजन में और जिसके पूजन में आपने अपना जीवन व्यतीत किया; जिसे आप अपना सर्वस्व, अपना आश्रय और अपना इष्टदेव मानते थे, उसी वीरशिरोमणि, आजीवन ब्रह्मचारी, अतुलबल-राशि, आंजनेय, रामजन्द्रजी के प्रिय-पात्र, श्रीहनुमानजी का यह पावन-चरित्र आपकी पुण्य-स्मृति में अत्यंत श्रद्धा-भक्ति एवम् प्रेमपूर्वक समर्पण करता हूँ। ओ स्वर्गीय आत्मा! अपने छोटे पुत्र की यह अत्यल्प भेंट अंगीकार कर।

ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी
१९८७ विक्रमीय

आपका हृत्खण्ड
गणेशदत्त

शाब्दिक सेवा

अतुलितबलधामं, स्वर्ण-शैलाभ-देहं।
दनुजवनकृशानुं, ज्ञानिनामाग्रगण्यं॥
सकलगुण निधानं, वानराणामधीशं।
रघुपतिवरदूतं, वातजातं नमामि॥
(गो० तुलसीदास)

मैं बहुत दिन से इस विचार में था कि इष्टदेव महावीर श्री हनूमानजी का एक सर्वांग सुन्दर जीवनचरित्र, अनेक ग्रन्थों से संकलित कर, हिन्दी में प्रकाशित किया जाय। क्योंकि इनका नाम विश्वविश्रुत है और हिन्दू जनता के घरों में आराध्यदेव माने तथा पूजे जाते हैं। ये अपने ब्रह्मचर्य, बल तथा उपकार के लिये आदर्श देव हैं, जो लोग ब्रह्मचारी, बली और उपकारी बनना चाहते हैं, उन्हें, श्रीहनूमानजी के चरित का अवश्य पाठ करना चाहिये।

लेखक ने यह उपयोगी ग्रन्थ लिख कर बड़ा ही काम किया है। एक लम्बी-चौड़ी भूमिका लिख कर भली भाँति यह प्रदर्शित कर दिया है कि उन्हों ने बहुत विवेचना के साथ इसे लिखा है। भाषा भी ऐसी सरल लिखी गई है कि सभी लोग कहानी की भाँति पढ़कर आनन्द ले सकते हैं। हमें इस पुस्तक के पढ़ने में कई स्थान पर आँखों से आँसू निकल पड़े और शरीर पुलकायमान हो गया। हम पाठकों से अनुरोध करेंगे कि वे वीरकेसरी अञ्जनीकुमार शंकरतेजधारी पवनपुत्र के चरित को साद्यन्त पढ़ जायँ और ऐसे ग्रन्थ के लिखने के लिये मित्रवर 'इन्द्रजी' को तथा प्रकाशित करने के लिये श्रीमान् व्यासजी को हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

'राम'-सम्पादक
काशी

जगन्नारायणदेव शर्मा
(कविपुष्कर)

कौन ऐसा हिन्दू है, जो श्रीहनुमानजी के नाम से परिचित न हो। हिन्दू ही क्या, बल्कि दूसरे पढ़े-लिखे लोग जिन्होंने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी का इतिहास पढ़ा है हनुमानजी के नाम से अनभिज्ञ नहीं रह सकते। आज लाखों नहीं बल्कि करोड़ों ऐसे लोग हैं, जो हनुमानजी को ईश्वर की भाँति पूजते हैं। ऐसा कौन-सा गाँव भारतवर्ष का है जहाँ हनुमानजी के दो-चार मन्दिर न हों। दो टपरियों के गाँव में भी, यदि दूसरे देवताओं की प्रतिमा अथवा मन्दिर नहीं होगा तो हनुमानजी की प्रतिमा अथवा मंदिर तो अवश्य ही मिलेगा। इसी से अनुमान किया जा सकता है कि हिन्दू लोगों के हृदय में हनुमानजी के लिये कितना अधिक आदर-सम्मान है।

यह एक मानी हुई बात है कि साधारण व्यक्ति की पूजा कोई भी नहीं करता। असाधारण गुण और प्रतिभा-सम्पन्न पुरुषों का ही आदर होता है। महावीर एक अद्वितीय व्यक्ति थे। उनके समकालीन, बल्कि समान बल और समान जाति के सुग्रीव, अंगद, बालि आदि अनेक योद्धा थे, परन्तु आज भारतवर्ष में इनमें से किसी की भी पूजा प्रचलित नहीं है। केवल हनूमान

ही आज लाखों वर्ष बीत जाने पर भी बड़ी श्रद्धाभक्ति और प्रेम के साथ पूजे जाते हैं। मनुष्य व्यक्ति की पूजा नहीं करता बल्कि उसके गुणों की पूजा करता है। हनुमान सर्वगुण-सम्पन्न होने के कारण पूज्य हैं। वे संसार के बल-देवता थे। इस पुस्तक के पढ़ने से उनके अतुलित बल का पता चलेगा। उस समय क्या बल्कि उनके बाद भी आज कोई ऐसा वीर नहीं हुआ है जिसके साथ हनुमानजी की तुलना की जा सके। द्वापर के अन्त में महाराजा पाण्डु के द्वितीय पुत्र, जिनकी उत्पत्ति पवनदेव के औरस से थी, भीमसेन नामक एक विश्व-विख्यात पुरुष हुए हैं। ये अत्यंत बलवान थे, कहते हैं इनमें ६० हजार हाथियों का बल था, परन्तु महावीर हनुमान की तुलना इनसे भी नहीं की जा सकती। इस पुस्तक का अंतिम प्रकरण "भीमसेन से भेंट" पढ़ने पर प्रकट हो जावेगा कि हनुमानजी के बुढ़ापे में जो उनमें बल था, उसका षोडशांश भी भीमसेन में नहीं था। बलरामजी, जो कि द्वापरयुग के बल-देव माने जाते थे वे भी हनुमान से हारकर भाग गये थे। अर्थात् अभी तक इस पृथ्वीतल पर हनुमान के सिवाय दूसरा कोई भी उतना बलवान पुरुष नहीं हुआ है। वास्तव में आज संसार उनके बल की पूजा कर रहा है। यदि कोई यह कहने का साहस करे कि श्रीरामजी के कारण उनकी इतनी इज्जत हुई, तो हम यहाँ यह पूछ सकते हैं कि रामजी ने हनुमान की इतनी प्रतिष्ठा किसलिये की थी? इसका उत्तर यही होगा कि उनके पुरुषार्थ के कारण। अतएव यही सिद्ध होता है कि हनुमान

की प्रतिष्ठा उनके बल-वीर्य के कारण हुई। इस पुस्तक को पढ़ने पर आपको उनके महत्पुरुषार्थ का पता चलेगा। कवि ने उनके पुरुषार्थ का वर्णन इस प्रकार किया है—

"गोष्पदीकृतवारीशं मशकीकृत राक्षसम्।
रामायणमहामालारत्नं वन्देऽनिलात्मजम्।"

जिसने अति विस्तृत शतयोजन समुद्र को गौ के खुर से बने हुए गड्ढे की तरह लाँघा और जिसने राक्षसों को मच्छर की तरह नाश किया उस रामायण रूपी महामाला के मुख्य रत्न वायु-नन्दन हनुमान को मैं प्रणाम करता हूँ। कवि के इस कथन से हनुमान के बल का बहुत कुछ पता चल जाता है।

हनुमानजी में इतने असीम बल का कारण उनका आजन्म और आमरण ब्रह्मचर्य-व्रत था। ब्रह्मचर्य की महान शक्ति के विषय में यहाँ कुछ लिखकर व्यर्थ ही पुस्तक के पृष्ठों की वृद्धि करना ठीक नहीं है। क्योंकि इसके विषय में सभी परिचित हैं। और महावीरजी इसके जीते जागते प्रत्यक्ष प्रमाण हैं—यह पुस्तक उनके चरित्र पर बहुत कुछ प्रकाश डालेगी। वीर्य-रक्षा, और पुरुषार्थ उनके जीवन की ये दो मुख्य बातें हैं। यही उनके चरित्र से ग्रहण करने योग्य शिक्षाएँ हैं।

भारतवर्ष में आज असंख्य देवताओं की पूजा होती है किन्तु पूजा का असली रहस्य, मुख्य महत्व अब बिलकुल नष्ट हो गया है। किसी देवी की प्रतिमा विशेष पर जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प,

फल आदि वस्तुएँ चढ़ाकर उसके आगे रटे हुए संस्कृत के दो-चार, दस-बीस श्लोक बोल देना ही आज पूजा मानी जाती है ! जब से ऐसी पूजाओं की देश में भरमार हो गई तभी से हमारा पतन हुआ है। उदाहरणार्थ हनुमानजी की प्रतिमा पर मंगल-शनि के दिन अथवा अन्य किसी पर्व के दिन तेल-सिन्दूर चढ़ाना धूप देना, गन्धाक्षत से पूजन करना, स्तुति-प्रार्थना करना, आरती उतारना और प्रसाद बाँटकर जै जै के शब्द से उस स्थान को निनादित कर देना उनकी पूजा समझी जाती है परन्तु वास्तव में यह उस बल-देवता की पूजा नहीं है। हनुमानजी के भक्त को सबसे पहले उनके चरित का अपने जीवन में ढालना चाहिए। ब्रह्मचर्य से रहना चाहिये। यदि गृहस्थ हो तो पत्नीव्रती बनकर नियमपूर्वक वीर्य-रक्षा करनी चाहिए। नित्य व्यायाम करके बल-संचय करना चाहिए। अस्त्र-शस्त्र परिचालन सीखना चाहिये विद्वान् बनना चाहिये। सत्य-धर्म के लिये अपने सुखों को ठुकराना सीखना चाहिये। परोपकार के लिये प्राणोत्सर्ग करना सीखना चाहिये। वचन-पूर्त्ति के लिये प्राणपण से चेष्टा करनी चाहिये। सतत उद्योगी बनना चाहिये। आलस त्याग देना चाहिए। मादक पदार्थों से बचना चाहिये। परस्त्री को माता और बहिन समझना चाहिये। इत्यादि। जो इन गुणों से वंचित हों, उन्हें महावीर की पूजा करने का कुछ भी अधिकार नहीं है। तमाखू, गाँजा, भाँग, चरस, मदिरा आदि पीनेवाले मनुष्यों को महावीर की पवित्र मूर्ति को छूकर उसे गन्दा बनाने का कोई अधिकार

नहीं है। इन्द्रिय-लोलुप व्यभिचारी मनुष्य को क्या हक़ हासिल है कि उस जितेन्द्रिय हनुमान की प्रतिमा को स्पर्श करे। ऐसे पापियों पर महावीर कैसे प्रसन्न हो सकता है? यह एक विचार करने योग्य बात है। मेरे खयाल से ऐसे अधम लोग यदि हनुमान की भक्ति करेंगे तो वे अवश्य ही लाभ की अपेक्षा हानि उठाने के योग्य हैं।

हमारे इस कहने का कोई यह मतलब न समझ ले कि हम हनुमान की भक्ति के लिये इन्कार कर रहे हैं। नहीं, हम यह कहना चाहते हैं कि हनुमानजी के भक्तों को उचित है कि वे हनुमान के चरित्र को अपने जीवन में ढालने की चेष्टा करें। बस यही सच्ची हनुमद्भक्ति है—यही उनकी पवित्र पूजा है। बिना ऐसा किये पूजा-पाठ और भक्ति-भजन सभी निष्फल हैं। लाल लँगोट बाँधकर मस्तक में भस्म अथवा सिन्दूर का तिलक लगा-कर हनुमान-चालीसा या संकट-मोचन का पाठ करने से महावीर प्रसन्न नहीं होते। वे तो तुम्हें सदाचारी, इन्द्रिय संयमी, और व्यायामशील देखकर प्रसन्न होंगे। हनुमान के भक्तों का फर्ज है कि वे हनुमानजी के चरित्र का मननकर तदनुकूल आचरण करें इसी में हनूमानजी की प्रसन्नता है। यह प्रस्तुत पुस्तक आपको इस विषय में बहुत कुछ ज्ञान करावेगी।

भारत में महावीर के असंख्य भक्त हैं। परन्तु मुझे खेद है कि किसी ने भी इस ओर ध्यान देकर उनके चरित्र को एक जगह संग्रह कर देने का प्रयत्न नहीं किया। यदि मैं भूल नहीं

करता हूँ तो मैं कह सकता हूँ कि अभी तक किसी भी भाषा में हनुमानजी का चरित्र नहीं है। जो कुछ भी है वह हमारे पुराणों में और रामायण तथा महाभारत में बिखरी हुई कथाएँ हैं। यह एक असंभव-सी बात है कि प्रत्येक मनुष्य हमारे सभी इतिहास-ग्रथों को पढ़े या सुन सके। अतएव हनूमान का चरित्र विषयक ज्ञान अधूरा ही रह जाना संभव है। आज हिन्दू लोग उतनी ही कथाएँ महावीरजी के सम्बध में जानते हैं जितनी कि उन्होंने रामायण में पढ़ी या सुनी है। रामायण में हनूमान-चरित्र का आरंभ सुग्रीव की रामजी के साथ मित्रता से होता है और राज्याभिषेक पर समाप्त हो जाता है। आगे-पीछे का चरित्र नहीं मिलता!

हम एक बात को उदाहरणार्थ यहाँ देते हैं। हनूमानजी के जन्म की एक भी कथा निश्चित रूप से नहीं प्राप्त होती। इन्हें वायु-पुत्र, केसरी-पुत्र और शंकर का पुत्र कहा जाता है। यह एक उलझन ही है। कई ग्रन्थों में इस विषय को देखकर जो कुछ भी हमें उचित जान पड़ा वही मैंने लिखा है। हनुमानजी की जन्म-कथा पर सप्रमाण निबन्ध लिखनेवाले को एक "स्वर्ण-पदक" देने की हमने समाचार-पत्रों में सूचना भी छपवाई, परन्तु खेद है कि एक दो सज्जनों ने ही कुछ लिखकर भेजा था। वह भी इतना अधूरा और प्रमाणरहित था कि उससे कहीं अधिक तो हमें ही ज्ञात था। कितने आश्चर्य की बात है कि करोड़ों हिन्दू अहर्निशि हनुमान की पूजा-भक्ति में अपना जीवन व्यतीत करते हैं, परन्तु उन्हें यह भी ज्ञात नहीं कि हमारे पूज्य इष्टदेव की उत्पत्ति किस प्रकार है?

हमने जैसा भी ग्रन्थों में लिखा पाया पैसा ही यहाँ लिख दिया है संभव और असंभव का प्रश्न हमने हृदय से हटा ही दिया है। आजकल एक सिद्धान्त-सा हो गया है कि "जो बात हमारी समझ में नहीं आती, उसी पर असंभव और प्रकृति नियम के विरुद्ध की छाप लगा देते हैं। परन्तु हमारी समझ में ऐसा करना अपनी अल्पज्ञता है। जो बात इस जमाने में हमें असंभव और असंगत दिखाई देती है, संभव है उस युग में वह संभव और संगत हो। बिना आगा-पीछा सोचे किसी भी विचित्र बात को सुनकर जो हमारी बुद्धि की पहुँच से दूर हो उसे असंभव कह देना मैं अनुचित समझता हूँ। हमने इस ग्रन्थ में असंभव बातें भी लिख दी हैं क्योंकि संभवतः इस युग में असंभाव्य वस्तु उन दिनों संभाव्य हो। आज से कुछ वर्ष पूर्व जब तक हवाई जहाज की सृष्टि नहीं हुई थी; कुवेर का पुष्पक विमान गप्प महापुराण की एक कथा गिनी जाती थी किन्तु आज उसी बात को गप्प कहने का साहस नहीं पड़ता। आज इस युग में "असंभव" शब्द धीरे-धीरे हटता जा रहा है, तब हमें अपने ग्रन्थों के विषय में भी कवियों की अतिशयोक्ति और रूपक छोड़-कर असंभव शब्द को हृदय से हटाकर उसपर विचार करना चाहिये। इस प्रकार जब कहीं हमारी कई पीढ़ियाँ विचार करते-करते खप जावेंगी तब कहीं कुछ रहस्य समझा जा सकेगा!

सब ग्रन्थों में, महावीरजी को बन्दर वानर, कपि, प्लवं-गम इत्यादि नामों से सम्बोधित किया गया है। हमने चित्रों में

भी हनुमानजी को बन्दर की सूरत का पूँछदार बना देखा है। इस पुस्तक के चित्रों में भी इसी नियम का अनुसरण कर हनुमान की शक्ल बन्दर की रखी गई है। यद्यपि ग्रन्थों को पढ़कर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच गये हैं कि श्रीहनुमानजी बन्दर नहीं थे अपितु मनुष्य थे। तथापि हमने इस पुस्तक में ऐसा विषय कहीं भी नहीं आने दिया है कि उन्हें बन्दर मानने से स्पष्ट इन्कार कर दिया हो। हमें एक पुस्तक आज से १७।१८ वर्ष पूर्व पढ़ने को मिली थी। उस पुस्तक का नाम "हनुमानजी का जीवन-चरित्र" था। वह किसकी लिखी हुई थी, यह मुझे याद नहीं, तथापि इतना मुझे याद है कि वह जैन-धर्मानुमोदित चरित्र था। उसमें जो जो बातें उन्हें असंभव मालूम दीं उन्हें निकालकर उसका रूप ही बदल दिया गया। कथाएँ भी कुछ असंगत-सी और गढ़न्त-सी मालूम होती थीं। उसमें हनुमानजी का विवाह सुग्रीव की पुत्री से होना लिखा था। जिसका वाल्मीकि अध्यात्म, तुलसीदास की रामायणों आदि में कहीं भी जिक्र नहीं है। इन पुस्तकों में ही क्या बलिक अन्य ग्रन्थों में, जिनमें कि श्रीमहावीरजी का चरित मिलता है, यह विवाह-विषयक कोई कथा नहीं मिलती। हमने ऐसा नहीं किया है। जहाँ तहाँ हनुमान को बानर भी लिखा है और उनकी पूँछ का भी जिक्र किया है। जहाँ पुस्तकों में पूँछ का जिक्र आया, वहाँ हम उसे लिखने में कैसे छिपा सकते थे? जैसे "अशोक-वाटिका में मेघनाद ने हनुमान को बाँध लिया और अपने पिता के दरबार में ले गया। वहाँ

उनकी पूँछ में आग लगा दी गई, जिससे उन्होंने सारी लंका की होली जला दी। यदि हम यहाँ पूँछ विषय को छोड़ जावें तो बहुत कुछ घटना छूट जाती है और यदि मन-गढंत कथा बनाकर लगा दें तो भी अनर्थ ही होता। कई विद्वानों ने "लाँगूल" शब्द का अर्थ पूँछ न करके "एक प्रकार का आभूषण" किया है। यह आभूषण विशेष वानरवंशीय लोगों को अधिक प्रिय होता था। कुछ लोगों ने "लाँगूल" का अर्थ "कर-कंकण" किया है। रावण ने कहा था—

"कपीनां किल लांगूलमिष्टं भवति भूषणम्।
तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन दग्धेन गच्छतु।"

(वाल्मीकि सुंदरकाण्ड)

इस श्लोक का "भूषण" शब्द लेकर लांगूल को भूषण सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु इसे हम जोरदार प्रमाण नहीं कह सकते। यदि यह कहा जाय कि "मोर की शिखा उसका भूषण है।" तो इससे यह सिद्ध नहीं हो सकता कि मोर-शिखा मोर के पास कोई जेवर है। यह विषय बड़ी ही उलझन और झंझट का है। दोनों पक्षों के पास प्रबल प्रमाण हैं किन्तु हम यहाँ दोनों का युद्ध कराना नहीं चाहते। जहाँ लांगूल शब्द मिला वहाँ हमने लांगूल लिख दिया और जहाँ पुच्छ शब्द मिला वहाँ पुच्छ लिख दिया। हमने इस झगड़े को निपटाना अपनी शक्ति के बाहर देखकर इसमें हाथ ही नहीं डाला। क्योंकि महाभारत वन पर्व के १४६ वें अध्याय से "भीमसेन से भेंट" नामक जो कथा

हमने इस पुस्तक में ली है उसमें भी पूंछ का वर्णन है। उसे हम "लांगूल नामक आभूषण" लिखते तो सारा विषय ही असंगत-सा हो जाता है। इसलिये अपनी ओर से कुछ भी न लगाकर ज्यों का त्यों लिख दिया है। संभव है आज से लाखों वर्ष पूर्व मनुष्यों की कोई ऐसी जाति भी रही हो जिसके पूंछ का-सा कोई चिन्ह रहा हो। आज जब हम पृथ्वी के गर्भ से सींगदार मनुष्यों के अस्थि-पंजर प्राप्त होने के समाचार पढ़ते हैं तो संभवतः पूँछदार मनुष्य भी पूर्व समय में होते हों और मुमकिन है आगे चलकर यह भी सिद्ध हो जावे कि पूँछदार मनुष्य होने के कारण ही उन मनुष्यों को वानर कहा गया था। यह एक अत्यंत विचार करने योग्य प्रश्न है। डॉर्विन की थियोरी को यदि मान लिया जाय तो उसका तो यह सिद्धान्त ही था कि समस्त मानव जाति बंदरों की औलाद है। धीरे-धीरे इसकी दुम नष्ट हो गई। ये सुधरे हुए बंदर हैं। अस्तु।

अब हम यहाँ इस बात पर विचार करेंगे कि "हनुमान वास्तव में बन्दर नामक पशु थे या मनुष्य।" इस पुस्तक को लिखने के लिये मुझे जिन जिन ग्रंथों को पढ़ना पड़ा और जिन कथाओं का मनन करना पड़ा, उससे तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हनुमानजी बन्दर पशु तो नहीं हो सकते। क्योंकि पशु शब्द ही अज्ञानी का द्योतक है। हनुमान तो बड़े ही ज्ञानी थे। हमने निम्न प्रश्न विद्वानों के विचारार्थ रखना ठीक समझा है।

(१) अंजनी मनुष्य थी। पवन, देवयोनि थे। चरु जो पवन

ने अंजनी को लाकर दिया था वह मनुष्य-गर्भ के लिये दिया गया था। अतएव हनुमानजी पशु नहीं होने चाहिएँ।

(२) बालि के अन्याय पर मतभेद उत्पन्न होना और मंत्रित्व पद को ठोकर मारकर सुग्रीव का साथ देना।

(३) सुग्रीव का मंत्री होकर रहना।

(४) ब्राह्मण वेष बनाकर श्रीरामजी के पास गुप्त रूप से भेद लेने आना और रामचन्द्रजी का अपने भाई लक्ष्मण से हनुमान का भाषण सुनकर यह कहना कि—

"नामृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः।
नासामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम्॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधाश्रुतम्।
बहुव्याहरतानेन न किंचदपशब्दितम्॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटेच भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपिच सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित्॥
संस्कार क्रमसम्पन्ना मद्रुतामविलम्बिताम्।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदय हर्षिणीम्॥
एवम् विधो यस्य दूतो न भवेत् पार्थिवस्यतु—
सिध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणांगतयोऽनघ॥

(वा० रा० किष्किंधा कांडे)

अर्थात्—यह इतना अच्छा स्पष्ट, मधुर और शुद्ध बोलता है कि चारों वेदों का ज्ञाता भी इतनी अच्छी तरह भाषण नहीं कर सकता। मालूम होता है, इसने व्याकरण कई बार पढ़ा है। भला

जिस राजा के दूत इतने होशियार हों उसका कौन सा काम सिद्ध नहीं होगा ?"

(५) हनुमान का संस्कार सम्पन्न होना।

(६) यज्ञोपवीत धारण करना।

(७) संध्योपासन आदि पवित्र कार्य करना।

(८) इनकी जाति में अग्नि-संस्कार होना—

"और्ध्व दैहिकमार्यस्य क्रियतामनुकूलतः ।"

(वा० रा० कि० कांड०)

(९) अन्त्येष्टि के बाद जनेऊ बदलना।

"ततोऽग्नि विधिवद्दत्वा सोपसव्यं चकारह।" वा० रा०

(१०) हनुमान वेदवक्ता थे। सुग्रीव, बालि अंगद, जाम्बवान् नील नल आदि सभी वेदज्ञ थे।

(११) हनुमान ने अग्नि जलाकर राम और सुग्रीव की मित्रता कराई। जब कि इस जमाने में आज भी अग्नि-साक्षी द्वारा मैत्री-बंधन नहीं होता !

(१२) पाप-पुण्य की मर्यादा का पालन करना।

(१३) रावण की लंका में जाकर बुद्धिमत्तापूर्वक अपना काम बनाना। सीता को समझाना। रावण की शक्ति देखने के लिये उत्पात करना। लंका जलाना और चूड़ामणि लेकर सकुशल लौटना। और पहिले "हाँ देखी सीता" ऐसा कहना ताकि सुनने-वाले को जरा भी दुःख करने का मौका न आवे।

(१४) सीता का हनुमान को रावण समझना (बंदर होते तो कदापि भ्रम न होता)

(१५) लंका भेजते समय उनके साथियों का उन्हें समुद्र-तट पर यह कहना कि "तुझमें ही देश-काल जानकर काम करने की बुद्धि है, तू नीति का पंडित है। इत्यादि

(१६) राजतिलक के समय रत्न, वस्त्र, धूप, औषधियों का एकत्र करना। यज्ञ करना और सुग्रीव को राजतिलक करना।

(१७) आर्य कहलाना।

(१८) राम के राज्याभिषेक के समय, हनुमान को राम का गले लगाकर मिलना।

(१९) उसी समय सीता द्वारा एक बहुमूल्य सर्वोत्तम मणियों का हार दिया जाना।

(२०) वानर पशु से अधिक क्या बल्कि मनष्य जाति से न होनेवाले कई कार्य करना।

इत्यादि बातों पर विचार करने से हनुमानजी के वानर-पशु होने में सन्देह होने लगता है। हमारे विचार से यह एक आर्य जाति का भेद था जो वानर, बन्दर नाम से प्रसिद्ध होंगे। इस जाति में बन्दरों का-सा गुण-कर्म-स्वभाव होगा, अतएव उस समय लोग इन्हें वानर कहने लगे होंगे। वन में रहकर फल, मूल, कन्द खानेवाले को वानर कहते हैं। मादक पदार्थों से बचनेवाला, समुद्र-जल में भी अपने आत्मा की रक्षा करनेवाला "कपि कहलाता है। लम्बा कूदनेवाला, नाव वगैरः से जल में विचरने

वाला "प्लवग" माना जाता है। इस जाति के लोग इन गुणों से युक्त होने के कारण संभवतः वानर कहलाये हों ?

पहिले समय में मनुष्यों की जातियों के नाम "नाग" और "पतग" वगैरः भी थे। वास्तव में वे मनुष्य थे। साँप अथवा पक्षी नहीं थे। महाराजा जटायु और सम्पाति पतग जाति के ब्राह्मण थे। नागवंशी तो अब तक भारत में कई क्षत्रिय कुल हैं। अगस्त्य मुनि के आश्रम में नाग और पतग जाति के विद्यार्थी भी विद्याभ्यास करते थे। वाल्मीकि रामायण में इसका जिक्र है—

"यत्रदेवाश्च यक्षाश्च नागाश्च पतगैः सह।
वसन्ति नियताहारा धर्ममाराधयिष्णवः ॥"

आज भी भारत में कई कुल "भूत" नाम से प्रसिद्ध हैं। दरअस्ल ये भूत नहीं, मनुष्य ही हैं, किन्तु भूत कहे जाते हैं। जापानियों की शक्ल और कूदफाँद देखकर रूस-निवासियों ने उनका नाम यलो मंकी (Yellow monkey) अर्थात् पीले बन्दर रख दिया था। रूसी लोगों को आज भी योरोप में रसियन बीअर (Russian bear) अर्थात् रूसी भालु कहते हैं। बृटिश लायन (British lion) और जान बुल (Jonh bull) अर्थात् जान बैल अंग्रेज जाति के लिये प्रयोग होता है। यदि किसी जाति के नाम से ही अर्थ लगाया जावे तो बहुत कुछ अनर्थ हो जाने की संभावना है। हम इस विषय को अधिक न बढ़ाकर पाठकों के विचारार्थ रखते हैं। आशा है पाठकों को जो कुछ भी उचित मालूम होगा, वही इसमें से ग्रहण कर लेंगे।

हनुमानजी के समुद्र-लंघन के विषय में भी अलग-अलग बातें पाई जाती हैं। कहीं लिखा है कि वे आकाश मार्ग से उड़कर वहाँ पहुँचे। कहीं लिखा है कि वे जल में तैरकर समुद्र पार गये। कहीं लिखा है कि वे छोटी सी नाव में बैठकर लंका पहुँचे। इन बातों में-से कौन सी बात सच मानी जावे? हमने वाल्मीकि रामायण को अधिक प्रामाण्य माना है, अतएव यही लिखा है कि वे समुद्र में तैरकर लंका में गये और वापस लौटे! आकाश मार्ग से उड़कर जाने में एक शंका होती है। क्योंकि समुद्र तट पर पहुँचकर वे सोचने लगे कि—

"प्राकारैर्बहुभिर्युक्तं परिखाभिश्च सर्वतः।
"प्रवेक्ष्यामि कथं लंकामितिचिंतापरोऽभवत्॥"

(अध्यात्मरामायण)

लंका के चारों ओर बड़ी-बड़ी खाइयाँ और बड़े-बड़े कोट हैं इसमें किस प्रकार प्रवेश करूँ? फिर सोचा कि—

"रात्रौवेक्ष्यामि सूक्ष्मोऽहं लंकांरावणपालिताम्।"

रावण-पालित लंका में रात्रि के समय छोटा वेश बनाकर प्रवेश करूँगा। यदि हनुमानजी आकाश-मार्ग से उड़कर आते तो वे समुद्रतट पर न ठहरकर सीधे ही लंका में जा उतरते। यदि यह कहा जावे कि वे प्रकट होना नहीं चाहते थे तो रात्रि को ही उड़कर घुस जाते। लंका के द्वार में प्रवेश होकर लंकिनी से टक्कर होने का अवसर ही नहीं आता। इससे यह प्रश्न होता है कि हनुमान आकाश मार्ग द्वारा उड़कर लंका नहीं पहुँचे थे वल्कि

तैरकर ही गये थे। हनुमानजी के आकाश में उड़ने का जिक्र एक बार और भी है। वह है, "बचपन में उड़कर सूर्य तक पहुँचने का प्रयत्न।" ऐसी कई कथाएँ हैं जिन पर विद्वान् लोगों को विचार करने की अत्यंत आवश्यकता है। हमने चरित्र-चित्रण करते समय विवेचन नहीं किया क्योंकि ऐसा करने से चरित्र का रूप ही दूसरा हो जाने की आशंका थी। हमें तो जहाँ कहीं भी जो कथा सप्रमाण प्राप्त हुई उसे ही हमने इसमें लिखा है।

राम-राज्याभिषेक के बाद महावीरजी के जीवन-चरित्र का कुछ सिलसिलेवार पता नहीं लगता। "रामाश्वमेध" में घोड़े के साथ जाकर यत्र तत्र युद्ध में सहायता करने तथा लवकुश से से युद्ध होने की कथा ली गई है। इसके बाद तो फिर हजारों वर्षों तक आपके चरित्र का कुछ पता नहीं लगता। अर्जुन और भीमसेन से मिलने की कथा "महाभारत" ग्रंथ में मिलती है। हनुमान द्वारका भी गये थे। ये सब कथाएँ द्वापर के अंत की हैं। इसके बाद तो आज तक किसी बात का भी पता नहीं लगता। हनुमान सप्त चिरजीवियों में से एक हैं। अतएव चिरजीवी होने के कारण उनका दीर्घ काल तक जीवित रहना सिद्ध होता है। वैसे कई कथाएँ हैं कि हनूमानजी ने गो० तुलसीदासजी को तथा समर्थ श्रीरामदासजी को दर्शन दिये किन्तु, विशेष प्रमाण न होने के कारण और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्व शून्य होने के कारण हमने इन कथाओं को नहीं लिखा। क्योंकि भक्तों को दर्शन देने की कथाएँ एक नहीं असंख्य मिल सकती हैं किन्तु वे मान्य नहीं

हो सकतीं अतएव हम केवल प्राचीन इतिहासों ही से चरित्र लिखकर इसे समाप्त कर देना ठीक समझते हैं।

संभव है इस चरित्र में भी हम कई कथाएँ न लिख सके हों। क्योंकि सब पुराण और उपपुराण तथा अन्य ऐतिहासिक ग्रंथों का देख लेना एक कष्टसाध्य और समयसाध्य कार्य था। हमें जिन जिन पुस्तकों में हनुमानजी के चरित्र का पता लगा, उन सबको देखकर इस चरित्र को लिखा है। इसके अतिरिक्त हम अपने उदार प्रेमी पाठकों से विनम्र प्रार्थना करते हैं कि, इन कथाओं के अलावा यदि किसी को कोई कथा मालूम हो, अथवा इन कथाओं के लिखने में किसी तरह को भूल रह गई हो तो मुझे सप्रमाण नीचे के पते पर लिख भेजने की कृपा करेंगे तो मैं उनका अत्यन्त आभारी होऊँगा, और भविष्य में इस चरित्र को सुधारने का प्रयत्न करूँगा। अन्त में अपनी भूलों के लिये क्षमा चाहता हूँ, और आशा करता हूँ कि इस जीवनी को पढ़कर आप मेरे परिश्रम को सफल करेंगे।

शान्ति कुटीर
आगर मालवा
(ग्वालियर स्टेट)

विनीत
गणेशदत्त शर्मा गौड़ "इन्द्र"

विषय-सूची

हनुमच्चरित्र

जन्म

आज से हज़ार दो हज़ार वर्ष पहिले की बात नहीं है, बल्कि लाखों वर्ष पहिले की बात है। उसके बाद तो द्वापर युग भी बीत गया और अब कलियुग को भी पाँच हजार वर्ष हो गये। यह कथा त्रेता युग की है। उन दिनों हम भारतीयों की कितनी उन्नतावस्था थी, उसका वर्णन हम आदि कवि महर्षि वाल्मीकिजी के वचनों ही में उद्धृत करते हैं। महर्षि वाल्मीकि तत्कालीन एक तपोनिष्ठ विद्वान् और माननीय व्यक्ति थे। उन्होंने वह जमाना अपनी आँखों देखा था। वे कहते हैं—

"न पर्यदेवन्विधवा न च व्यालकृतभयम्।
न व्याधिजं भयं चासीद्रामेराज्यं प्रशासति॥
निर्दस्युरभवल्लोकानानर्थं कश्चिदस्पृशत्।
न च स्म वृद्धावालानं प्रेतकार्याणि कुर्वते॥
सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वो धम परोऽभवत्।

× × × × ×

नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिता: ।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥
स्वकर्मसु प्रवर्त्तन्तेस्तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ।
आसन्प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृता ॥'(युद्ध काण्ड)

राम के राज्यशासन में न कहीं विधवाओं का रोना सुनाई दिया, न साँपों का भय हुआ और न रोग भय हुआ। संसार पापियों से शून्य था, कोई अनर्थ में नहीं पड़ता था और न बड़े अपने से छोटों का मृत्यु-संस्कार करते थे। सभी प्रसन्न थे, सभी धर्मानुरक्त थे। वृक्ष वनस्पति लता गुल्म आदि नियमित रूप से फलते-फूलते थे, वृष्टि भी समय पर होती थी और वायु सुखदायी बहता था। सब अपने अपने कर्मों से संतुष्ट, कर्त्तव्यपरायण थे, राम के शासनकाल में सबलोग धर्मपरायण थे, कोई झूठा न था। इसी को गोस्वामी तुलसीदासजी ने इस प्रकार कहा है—

"राम राज बैठे त्रयलोका, हर्षित भयउ गयउ सब शोका।
बैर न करहिं काहु सब कोई, राम-प्रताप विषमता खोई॥
वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेदपथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय शोक न रोग।
दैहिक दैविक भौतिक तापा, राम-राज नहि काहुहिं व्यापा।
सब नर करहिं परस्पर प्रीती, चलहि सुधर्म निरत श्रुति-रीती॥
चारिउ वर्ण-धर्म जग माहीं, पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं।
राम भक्तिरत नर अरु नारी, सकल परम गति के अधिकारी॥
अल्प मृत्यु नहिं कवनिउ पीरा, सब सुंदर सब निरुज शरीरा।

नहिं दरिद्र काउ दुखी न दीना, नहिं कोई अबुध न लक्षणहीना ॥
सब निर्दंभ धर्मरत धरनी, नर अरु नारि चतुर शुभ करनी।
सब गुणज्ञ सब पंडित ज्ञानी, सब कृतज्ञ नहिं कपट सयानी ॥

राम-राज्य विहगेश सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म स्वभाव गुण, कृत दुख काहुहिं नाहि।"

एक नारिव्रत रत नर झारी, ते मनवचक्रम पति हितकारी।
फूलहि फलहिं सदा तरु कानन, रहहिं एक सँग गज पंचानन ॥
खग मृग वैर सहज बिसराई, सबनि परस्पर प्रीति बढ़ाई।
लता विटप माँगे फल द्रवहीं, मन भावते धेनु पय स्रवहीं ॥
ससि सम्पन्न सदा रह धरणी, त्रेता भइ सतयुग की करणी।
राम राज्यकर सुख सम्पदा, वरणि न सकहिं फणीश शारदा ॥

विधु महि पूर पियूषन, रवि तप जितनहिं काज।
माँगे वारिद देहिं जल, रामचन्द्र के राज ॥

इस वर्तमान समय का, और उस समय का ज़रा मिलान तो कर देखिये। यदि वह समय स्वर्ण था तो यह मिट्टी है, यदि वह स्वर्ग था तो यह नर्क है, यदि वह आकाश था तो यह पाताल है और यदि वह सुख था तो यह दुःखपूर्ण जंजाल है। उन दिनों कहीं भी विधवाओं का रुदन सुनाई नहीं देता था, परन्तु आज उसी पुण्यभूमि भारत में दो करोड़ विधवाएँ अपनी दुःखभरी गर्म आहें लेकर खून के आँसू बहा रही हैं। उन दिनों बकरी और शेर भी मिलकर रहते थे, किन्तु आज यहाँ मनुष्य से मनुष्य मिलकर रहना नहीं चाहते। रातदिन धर्म के बहाने भाई-भाई के

खूनकी नदियाँ बहाई जा रही हैं। उन दिनों नर-नारी व्यभिचार को पाप समझते थे, परन्तु आज करोड़ों वेश्याएँ हमारे व्यभिचार का प्रत्यक्ष विज्ञापन देरही हैं। देश में रोग, शोक, भय, दुर्भिक्ष, दारिद्र्य, उत्पात आदि का नग्न नृत्य हो रहा है। लोग अल्पायु होते जारहे हैं, बालकों की मृत्यु-संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती ही जारही है। मूर्खों की वृद्धि हो रही है। लोग दाने-दाने के लिए छटपटाते नजर आते हैं। स्वार्थपरता की मात्रा बढ़ गई है। ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, कलह, फूट आदि सर्वनाशी कार्यों में लोग तल्लीन हैं। ब्राह्मणादि चारों वर्ण अपने अपने कर्मों से विमुख होरहे हैं। बादल भी समय पर यथेष्ठ जल नहीं देते। सारांश यह कि आज जो भारत की दुर्गति हम लोग देख रहे हैं, वह उस समय नहीं थी।

यह एक मानी हुई बात है कि जैसे लोग होते हैं वैसा ही समय भी बन जाता है और जैसा समय होता है वैसी ही लोगों की बुद्धि भी हो जाती है। दोनों बातों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। उस अच्छे जमाने में लोग भी अच्छे थे या यों कहिए कि अच्छे लोगों के कारण जमाना भी अच्छा था। इस समय न तो जमाना ही अच्छा है और न लोग ही। त्रेता युग में सारे भूतल पर धर्म की दुन्दुभी वज रही थी, पाप का कहीं भी नामोनिशान नहीं था। किन्तु यदि दुःख का अस्तित्व ही मिटा दिया जाय तो, सुख का आनन्द ही नहीं आवे। यदि पाप का नाम ही नष्ट कर दिया जाय तो पुण्य का उतना महत्व ही न रहे। इसी प्रकार यद्यपि उस युग में सर्वत्र सुख, शान्ति और धर्म का दौरदौरा था तथापि, माया

फाल्गुण की काली घटा की भांति कभी कभी धर्म पर पाप का आक्रमण हो जाया करता था। उन दिनों राक्षसों की प्रबलता बढ़ती जारही थी। भारतके दक्षिण में राक्षस लोग दल-बल सहित रहते थे। उनकी राजधानी का नाम लंका और उनके राजा का नाम रावण था। रावण ने धीरे-धीरे अपना प्रभुत्व इतना जमाया कि वह तत्कालीन आर्य राजाओं पर भी अपना पंजा जमा चुका था। सूर्यवंशीय राजा अनरण्य से युद्ध करके रावण ने सूर्यवंश को अपना करद राज्य बना लिया था। विदेह राज्य भी रावण का करद राज्य था, तभी तो सीता के स्वयंवर में आवश्यकता न होते हुए भी रावण को निमन्त्रित करना पड़ा था। उसने जहाँ तहाँ अपनी छावनियाँ डालकर सूबे नियुक्त कर दिये थे और, खर, दूषण, त्रिशिरा, मारीच, सुबाहु आदि सूबेदार अपने मातहत राज्यों से कर वसूल करके लंका भेजा करते थे। अपने स्वभाव के अनुसार कर वसूल करने में ये बड़ी से बड़ी सख्ती करते थे। इनके अत्याचारों से सब लोग अत्यन्त त्रस्त थे। इन लोगों का अत्याचार इतना बढ़ गया था कि बनवासी साधु महात्माओं तक से उनका रक्त कर-रूप में वसूल किया गया था। सारांश कि राक्षसों का अत्याचार पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। धार्मिक आकाश में पाप के बदल घुमड़ आये थे।

अब ऐसे महापुरुषों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी, जो इन पापियों के अत्याचारों का अंत कर, धर्म की रक्षा करे। सैकड़ों वर्षों तक धार्मिक पुरुष इस तरह पापाचारियों द्वारा कष्ट पाते रहे

घबरा गये—नाकोदम आगया। तब सूर्यवंशीय महाराजा दशरथ जीके घर पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी आदि महापुरुषों का जन्म हुआ। श्रीरामजी के साथ उनके बायें हाथ की तरह काम करनेवाले श्री हनूमानजी का जन्म भी इसी समय हुआ था।

उन दिनों कपिकुलश्रेष्ठ श्रीमान् केसरी नामक एक अत्यंत बलवान वानर मेरु नामक पर्वत पर रहता थ। वृक्षों के नीचे पर्वतों की कन्दराओं में रहकर वन्य फल-मूल-कन्द आदि खाकर अपना जीवन आनन्द-पूर्वक व्यतीत करता था। वनवासी होने के कारण तत्कालीन लोग इस जाति के मनुष्यों को वानर कहा करते थे। क्योंकि "वने भवं वानं। वानंरातिगृहाणातीति।" यह केसरी अत्यंत धार्मिक, दयालु, उदार, एवम् बुद्धिमान था। सूर्य के समान तेजस्वी और वृहस्पति के समान सर्वगुण सम्पन्न था। इसकी पत्नी का नाम "अंजनी" था। यह तपोनिधि महर्षि गौतम की पुत्री थी। अंजनी बड़ी ही होनहार स्त्री थी, रूपलावण्य में साक्षात लक्ष्मी के अनुरूप थी। ये दोनों स्त्री-पुरुष आनन्दपूर्वक अपना स्वर्गीय जीवन व्यतीत करने लगे। केसरी को सब प्रकार का सुख उपलब्ध था। जाति के लोग उसे मान-दृष्टि से देखते थे और सब प्रकार के ऐश्वर्य उसके आगे हाथ बाँधे खड़े रहते थे। किंतु इतना होने पर भी दोनों स्त्री पुरुष दुखी रहा करते थे। वह दुःख, संतान का घर में न होना था। रातदिन संतान-प्राप्ति की चिंता में उन दोनों का शरीर दुर्बल होता जारहा था।

एक दिन की बात है जब कि केसरी और देवी अंजनी अपने

आश्रम के बाहिर बैठे हुए बसन्त की यौवन-श्री का निरीक्षण कर रहे थे। प्राकृतिक सौंदर्य को देखकर वे अत्यंत प्रसन्न होते थे किंतु उनके मनमें दुःख की रेखा उनके सारे आनन्द को मिट्टी में मिला देती थी। दोनों स्त्री-पुरुष ऊपर से प्रसन्न किन्तु दुखी मन से आपस में बैठे कुछ बातें कर रहे थे। जब वे अपने दूसरे मित्र बान्धवों के आँगन में बालकों को खेलते देखते तो उनका दुःख हरा हो जाता था। वे अपने गृह को बालक-शून्य देखकर वज्राहत की तरह कुछेक क्षण के लिये जड़वत् हो जाते थे। इस प्रकार दोनों स्त्री-पुरुष दुःख के अगाध सागर की उत्ताल तरंगों में बहे जारहे थे, उनके लिये कोई आश्रयदाता दृष्टि नहीं आता था। सहसा, मधुर स्वर-लहरी ने उनका ध्यान भंग कर दिया। वे किसी एक दिशा की ओर देखकर, बड़ी उत्सुकता से किसीके आगमन की मार्ग प्रतीक्षा करने लगे। दोनों की आँखें आश्रम के मार्ग में घुसी जाती थीं। इसी बीच देवर्षि नारदजी ने प्रवेश किया, दोनों हाथ जोड़कर खड़े हो गये और आगे बढ़कर उन्हें अपने आश्रम में लिवा लाये। उनके चरण धोकर, उत्तम आसन दिया। पश्चात् किसी सामयिक विषय पर बातचीत होने लगी।

बातों ही बातों में देवी अंजनी ने देवर्षि से कृताञ्जलि हो प्रार्थना की—

'देव ! संतानशून्य गृह श्मशान के तुल्य होता है। और शास्त्रों में ऐसा है कि जिसके पुत्र नहीं, उसको स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती। दयानिधे ! आप कृपा करके ऐसा कोई उपाय बताइये कि हमारे

घर संतान हो, और हमारे हृदय को दग्ध करनेवाला यह दुःख दूर हो।"

अंजनी की ऐसी दीन प्रार्थना सुन नारदजी का हृदय दयार्द्र हो गया। वे कहने लगे—"अंजनी! तुम्हारे पुत्र अवश्य होगा। चिंता मत करो—धैर्य रखो गर्भ से जो बालक उत्पन्न होगा, वह महा-बल राशि, तेजस्वी, सर्वगुण सम्पन्न होगा। उसके द्वारा तुम्हारा नाम यावच्चन्द्र दिवाकर अजर अमर होगा। परंतु इसके लिये, तुम्हें "पवनदेव" की आराधना कर उन्हें प्रसन्न करना चाहिये। उनकी कृपासे तुम्हारा मनोरथ निस्संदेह सफल होगा।"

नारदजी के ये बचन सुनकर दोनों स्त्री पुरुष बड़े ही प्रसन्न हुए और उन्होंने देवर्षि के चरणों का स्पर्श कर अत्यन्त कृतज्ञता प्रकट की। नारदजी उठकर चले गये।

दूसरे ही दिन से देवी अंजनी ने पवनदेव की प्रसन्नता के लिये तप आरंभ कर दिया। अंजनी को इस प्रकार अपनी भक्ति में तल्लीन देखकर पवनदेव उसपर प्रसन्न हुए और पुत्र प्रदान के हित सोचने लगे।

× × × ×

उधर अयोध्या के महाराजा दशरथजी के राजमहलों में पुत्र-प्राप्ति के लिये ऋष्यश्रृंगजी यज्ञ करा रहे थे। यज्ञ पूर्ण होने पर ऋष्यश्रृंग ने राजा दशरथजी को पायस देकर अपनी प्रमुख ३ पटरानियों में बाँट देने की आज्ञा दी। राजा दशरथ बड़ी प्रस-न्नता से वह यज्ञ-हव्य लिये महलों में पहुँचे। किन्तु कार्यवशात्

महारानी सुमित्रा देवी उस वक्त वहाँ उपस्थित न हो सकीं, अतएव उनका भाग अलग रख दिया। इसी समय पवनदेव ने गृद्ध का रूप धारणकर पात्र सहित उस हव्य को चोंच में दाबकर आकाश मार्ग का रास्ता लिया। हव्य को गृद्ध के ले जाने पर महलों में हल्ला मचा, किन्तु किया भी क्या जा सकता था। सब लोग आकाश की ओर मुँह बाये रह गये। इस प्रकार देवी सुमित्रा के पायस का अपहरण देखकर महामना कौशल्या और कैकेई ने अपने अपने हिस्सों में से आधा आधा सुमित्रा को दिया। यही कारण था कि उनके दो पुत्र उत्पन्न हुए। कौशल्या के हव्य भाग से लक्ष्मणजी की उत्पत्ति हुई जो कौशल्यानन्दन श्रीरामजी के सहगामी हुए और कैकेई के भाग से श्री शत्रुघ्नजी उत्पन्न हुए थे जो कैकईनन्दन भरतजी के अनुगामी हुए।

उधर गृद्ध रूप पवनदेव उस हव्य के स्वर्ण-पात्र को लिये शीघ्रतापूर्वक वहाँ पहुँचे जहाँ देवी अंजनी ध्यानावस्थित बैठी तप कर रही थी। गृद्ध ने वह हव्य-पात्र अंजनी की प्रसरित अञ्जली में रख दिया और तत्काल अंतर्द्धान होगये। देवी ने अपनी अंजली में स्वर्णपात्र में भरे उस पदार्थ को देखकर अत्यंत आश्चर्य किया और सोचने लगी कि—इसका क्या किया जाय? इसी समय आकाशवाणी हुई—

"भक्षयस्व चरुं भद्रे पुत्रस्ते भवितामुना।
रक्षसां नाशने हेतुः श्रीरामचरणे परः॥"

भद्रे ! इसे खा लो । इसके खाने से तुम्हें पुत्र होगा जो राक्षसों का विनाश करेगा और श्रीरामजी का अनन्य भक्त होगा ।

यह सुनकर देवी अंजनी ने उस पात्र को मस्तक से लगाया और अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक उसे भक्षण कर अपने पति को सारा वृत्तांत कहा । पवनदेव के आशीर्वाद से अंजनी देवी गर्भवती हुई, और नौ महीने समाप्त होने पर दसवें महीने एक विश्ववंद्य पुत्र-रत्न प्रसव किया । जिस दिन श्रीहनुमानजी का जन्म हुआ, उस दिन चैत्र मास की पौर्णिमा थी । चित्रा नक्षत्र था और शनिवार था । उधर सूर्योदय हुआ था, और इधर इस वीर पुरुष का भूतल पर पदार्पण हुआ था । शुभवार शुभतिथि और शुभमास में जब कि सूर्य मेष राशि पर थे, हमारे चरित-नायक का अवतार हुआ था । श्रीरामजी का जन्म उसी संवत् उसी मास की नवमी के दिन हुआ था । अर्थात् श्रीरामजी हमारे चरितनायक से सिर्फ ६ दिन बड़े थे । इस कथा पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है श्री हनूमानजी रामचन्द्रजी के सबसे छोटे भाई थे, केवल अंतर इतना ही था कि वे राजमहलों में उत्पन्न हुए थे, और ये वनस्थली में । इसके अतिरिक्त यह भेद लोगों को बहुत कम मालूम था । तथापि श्रीराम ने हनुमान को अपने भाई के समान ही माना और हनुमानजी ने भी उनकी सेवाएँ कहीं लक्ष्मण से भी अधिक की थीं ।

हनुमानजी की ग्रह कुंडली

अपने गृह में पुत्र-रत्न देखकर केसरी को बड़ा ही आनन्द हुआ। सारे जंगल में त्रिविध-समीर बहने लगी। वृक्ष लताएँ, पुष्प और फलों के भार से भूमि को स्पर्श करने लगीं। नदी नाले ताल तलैया जल से पूर्ण हो इतराने लगीं। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी। ऋषी मुनि उपस्थित हो वेदगान करने तथा आशीर्वाद देने लगे। आश्रमवासिनी स्त्रियाँ झुण्ड के झुण्ड वन के अंजनी के घर बधाइयाँ गाने लगीं। केसरी ने वेदज्ञ ब्राह्मणों की अनुमति से तत्काल नवजात-शिशु का जातकर्म संस्कार किया। आज से कुछ महीनों पूर्व जहाँ चिन्ता और उदासी का साम्राज्य रहा करता था वहाँ आज आनन्द और हर्ष का समुद्र उमड़ता हुआ दिखाई पड़ने लगा और कुटुम्बियों के हर्ष को बढ़ाता हुआ शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा की भाँति वृद्धि पाने लगा।

देवी अंजनी या तो पुत्र के लिये तरसा करती थी, और अब परमात्माने उसे पुत्र भी दिया तो ऐसा रत्न दिया कि एक ही ने उसकी गोदी को निहाल कर दिया। वह अपने तेजस्वी पुत्र को देख कर मनही मन अत्यन्त प्रसन्न होती थी। सत्य है, सुपुत्र को पाकर आनन्द और कुपूत को पाकर दुःख होता है। किसी कवि ने ठीक कहा है—

"वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्ख शतान्यपि ।
एकश्चंद्रस्तमोहंति न च तारागणोऽपि च ।"

नामकरण

प्रातःकाल का समय है। उषा देवी रक्त वस्त्र परिधान कर आनन्दपूर्वक सूर्यदेव के आगे मनोपलक्ष्य में नृत्य कर रही है। जहाँ थोड़ी देर पूर्व अंधकार का साम्राज्य था वहाँ अब धीरे धीरे प्रकाश अपना प्रभुत्व स्थापित करता हुआ निराशा-वादियों को मानों उपदेश सुना रहा है। वह अपने संकेतों द्वारा दिखा रहा है कि संसार परिवर्तनशील है जहाँ अँधेरा था वहाँ अब प्रकाश आरहा है। निराशावादियों को तो वह उनकी भूल बता ही रहा है परंतु साथ ही साथ जल्दबाज आशावादियों को उदाहरण सहित दिखा रहा है कि कोई काम एकदम नहीं होजाया करता है। प्रत्येक कार्य धीरे धीरे ही हो सकता है। अंधकार के बाद एकदम प्रकाश नहीं हो सकता बल्कि प्रकाश अंधकार पर धीरे ही विजय पारहा है। अभी सूर्यदेव उदयाचल के उस ओर

ही अपनी यात्रा कर रहे हैं। शीतल, मंद, पवन पुष्पों को छूकर सुगन्धित बह रही है। रात्रि में विचरण करनेवाले प्राणी अपने अपने स्थानों को लौट गये। वनवासी तपस्वी अपने नित्यकर्म में तल्लीन हैं। योगी लोग अपनी यौगिक क्रियाओं को कर रहे हैं। कहीं कहीं सामगान होरहा है, कहीं अग्निहोत्र सम्पादन किया जारहा है। सारांश कि सारा वन यज्ञ की सुगन्ध से महँक रहा है और वेदध्वनि कर्णप्रदेश को पवित्र कर रही है। कपि-कुल श्रेष्ठ केसरी भी अपने संध्या अग्निहोत्रादि कार्यों से निवृत्त होनेवाले हैं।

वह देखिये पूर्व दिशा में उदयाचल के शिखर पर सूर्यदेव चढ़ आये। कैसा सुन्दर स्वरूप है? कैसा पीतमिश्रित लाल रंग है? हम उन्हें अपनी आँखों से अच्छी तरह देख सकते हैं। थोड़ी देर बाद जिसकी ओर देखने की आँखों में शक्ति नहीं रहेगी उसे अब अच्छी तरह देखा जा सकता है। ज्यों ज्यों इन्हें उच्चता प्राप्त होती जावेगी, ये लोगों की आँखों को चौंधियाकर अपना प्रताप दिखलाने की कृपा करेंगे। सच है—

"कहु खगेश अस को जग माँही, प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं।"

हमारे चरितनायक ने भी अपनी माता की गोदी में से लेटे लेटे लाल लाल सूर्य को देखा उन्होंने न जाने उसे खिलौना समझा या पका हुआ फल? एकदम अपनी माता की गोदी में से उछले। देवी अञ्जनी इन्हें सँभाले, इतने ही में तो ये आकाशमार्ग में जा पहुँचे। यह अद्भुत व्यापार देखकर कपिराज केसरी और माता अंजनी दुःख और आश्चर्य में निमग्न हो रुदन करने लगे।

हनूमान ने अपने माता पिता के करुण कन्दन की जरा भी पर-वाह न की और आकाश में आगे ही बढते चले गये। इस बृहदा-कार शरीर को आकाश-मार्ग में सूर्य की ओर निर्भय जाते देख-कर देवता लोग आश्चर्यपूर्वक विचारने लगे कि "आज अमावस्या भी नहीं है, असमय में ही यह राहु आज सूर्य को ग्रसने के लिये क्यों जारहा है? अवश्य कुछ न कुछ उत्पात हुआ चाहता है। राहु अपनी मर्यादा त्यागकर सूर्य पर आक्रमण करना चाहता है। अतएव सुरराज इन्द्र को इसकी सूचना देनी चाहिये ताकि वह सूर्य भगवान् की रक्षा का उपाय करे।" इत्यादि सोचकर देवता लोग शीघ्र ही इन्द्र की सेवा में पहुँचकर निवेदन करने लगे।

"महेन्द्र! सूर्यदेव की रक्षा शीघ्र कीजिये। उनपर कोई बड़ी भारी आपत्ति आनेवाली है। कोई एक विशालकाय राहु की भाँति उन्हें खाने के लिये उनकी ओर लपका चला जारहा है।"

देवताओं की यह बात सुनते ही इन्द्रराज ने अपना वज्र उठाया और ऐरावत पर चढ़, आकाशमार्ग में गमन किया। थोड़ी ही दूर चलकर देखा कि—वास्तव में कोई सूर्य की ओर बड़ी तेजी से गमन कर रहा है। सूर्य की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य जानकर इन्द्रराज ने अपना वज्र हमारे चरितनायक पर चलाया। इस समय हनुमान् ५ सौ योजन ऊँचे पहुँच चुके थे। इन्द्र का छोड़ा हुआ वज्र भयंकर शब्द करता हुआ हनुमान् की ओर चला। उन्होंने अपनी ओर इन्द्र-वज्र को आता देख अपने को उसकी चोट से बचाने का बहुत ही प्रयत्न किया किन्तु ठोढी

(हनु) में वह बड़े जोर से आ लगा। वज्र के लगते ही महावीर मूर्च्छित हो वहीं से पृथ्वी पर आ गिरे।

"योजनानां पंचशतं पतितोऽसि ततो भुवि।"

(अध्यात्म रामायणे कि० काण्ड)

अपने पुत्र को धराशायी देख अंजनी "हा पुत्र ! हा पुत्र !" कहकर बड़े जोर से फूट फूटकर रोने लगी। केसरी भी शोकाकुल हो विलाप करने लगा। इस समय अपना सहायक किसी को नहीं देखकर अंजनी ने अपने आराध्यदेव पवन का स्मरण किया और रो-रोकर कहने लगी—

"पवनदेव ! आपने कहा था कि तेरा पुत्र, रामकी सेवा करेगा और राक्षसों का संहार करेगा। किन्तु आज आपके सब वचन मिथ्या होरहे हैं ! मेरा ही पुत्र बेसुध हो पड़ा है ! देव ! रक्षा करो, मुझ दीन अबला की सहायता करो ! अपना वचन पूरा करो।"

ज्यों हीं पवनदेव ने अंजनी के करुणोत्पादक वचन सुने त्यों ही उन्होंने अपनी शक्ति को चौदहों लोकों से खींच ली। सारा ब्रह्मांड वायु-शून्य हो गया। देवता मनुष्य और राक्षस सभी घबराने लगे। इन्द्रराज का भी दम घुटने लगा। चौदहों लोकों में त्राहि त्राहि मच गया। अपने प्राण संकट में देखकर इन्द्रादि देवता लोग एकत्र हो श्रीब्रह्माजी की सेवा में ब्रह्मलोक पहुँचे। और हाथ जोड़ दीनतापूर्वक प्रार्थना करने लगे—

"पितामह ! क्या समस्त ब्रह्माण्ड नाश हुआ चाहता है ? क्या

प्रलयङ्कर शंकर का तृतीय नेत्र खुल चुका ? क्या इस विश्व का अंतिम समय आ गया ?"

ब्रह्मा ने पूछा—"आखिर इस तरह घबराने का कारण भी तो कुछ कहो। तुम लोग इतने क्यों व्याकुल हो ?"

इन्द्र ने कहा—"देव-देव ! कुछ समय पूव कोई एक विशाल देहधारी सूर्य को पकड़ने की इच्छा से सूर्य की ओर बढ़ रहा था। देवताओं ने सूर्य पर आनेवाले संकट की सूचना मुझे देते हुए उनकी रक्षा के लिए कहा। मैंने वज्र मारकर उसे भूतल पर गिरा दिया। यही हमारे कष्ट का कारण हुआ है। बस, तभी से पवन बन्द है। किसी भी लोक में साँस लेने का स्थान नहीं है। दम घुटा जाता है। जी घबराता है। थोड़ी देर यदि यही दशा रही तो प्रलय हो जावेगा।"

यह सुन ब्रह्मा ने विचार किया, और कुछेक क्षण बाद उत्तर दिया—

"आप लोग इस विषय में पवनदेव ही से प्रार्थना करें वे ही आपकी यह आपत्ति हटा सकते हैं। इसके लिए मैं विवश हूँ, असमर्थ हूँ, कुछ भी आप लोगों की सहायता नहीं कर सकता।"

ब्रह्मा के मुख से इस प्रकार टका-सा जवाब पाकर देवता लोग इन्द्र को साथ लिए पवनालय में पहुँचे और हाथ जोड़ सिर झुका कर कहने लगे—

"प्रभो ! हम देवगण आपकी शरण हैं। हमारी रक्षा करें। हमसे जो कुछ भी आपका अपराध हुआ है उसके लिए हम बार

बार क्षमा-याचना करते हैं। आप अपनी शक्ति को लोक-लोकान्तरों में प्रसरित कीजिये, अन्यथा जड़-चेतन, स्थावर-जंगम, देव, मनुष्य, राक्षस सभी नाश हुआ चाहते हैं।"

पवनदेव ने हँसकर कहा—"आपने मेरे वरद-पुत्र पर वज्र फेंक कर उसे धराशायी किया है, अतएव मैं अपने क्रोध को किस प्रकार शान्त करूँ?"

इन्द्र ने कहा—"स्वामिन्! अपराध तो गुरुतर हुआ है, किन्तु जो कुछ भी चाहें वह दण्ड देकर हमें क्षमा कीजिए। मेरे अपराध के कारण ब्रह्माण्ड को जीवशून्य मत कीजिये।"

पवन बोले—"सुरेन्द्र! यदि आप मुझे प्रसन्न करना चाहते हैं तो दो वर दीजिए।"

इन्द्र ने कहा—तथास्तु। कहिये, क्या चाहते हैं?

पवन ने कहा—पहला वर तो यही कि आपके वज्र से मर्माहत मेरा वरद-पुत्र जीवित हो और दूसरा यह कि वह अजर अमर हो।

इन्द्रादि देव "तथास्तु" कहके वहाँ से अपने अपने लोकों को चले गए। वीर हनूमान उठकर खड़े हो गये। पवनदेव ने अपनी शक्ति पुनः पूर्ववत् विश्व में फैला दी। प्राणीमात्र को परमानन्द हुआ देवी अंजनी और केसरी अपने पुत्र को सकुशल देख हर्ष-सागर में निमग्न हो गए। बारी बारी से गोदी में ले लेकर हनूमान का प्यार करने तथा हृदय से लगाकर अपने हृदय को अभूतपूर्व शान्ति पहुँचाने लगे।

संस्कृत भाषा में "हनु" शब्द का अर्थ चिवुक, ठोड़ी होता है। सुरपति इन्द्र का वज्र हमारे चरितनायक की ठोड़ी में लगा, जिससे उनकी ठोड़ी टेढ़ी हो गई। इसी कारण इनका नाम संसार में हनुमान प्रसिद्ध हुआ। इन्द्र का वज्र ठोड़ी पर पड़ जाने ही से आपका नामकरण सहज ही में हो गया। इन्हें वज्रांगी, कुलिश-कलेवर, इसी कारण कहते हैं कि पाँच सौ योजन ऊपर से गिर कर भी शरीर पर कोई चोट, या घाव नहीं हुआ।

प्राचीन काल में लोगों के नाम किस प्रकार उनके गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार रखे जाते थे, यह इसपर से स्पष्ट हो जाता है। आजकल की भाँति निरर्थक और भद्दे नाम उन दिनों रखने की रीति नहीं थीं। नक्षत्र के चरणों में जिन अक्षरों पर नाम रखा जाना चाहिये उन्हीं पर रखने की कोई कैद नहीं थी। हनूमान के गुण-कर्मों के अनुसार उनके कई और नाम भी थे तथा अब भी रखे जा सकते हैं। उन्हें, महावीर, मारुति, रामदूत, बजरंगी, आंजनेय, पवनात्मज, केसरीनन्दन, कपीश, आदि अनेक नामों से सम्बोधन किया जाता है। ये सब नाम सार्थक और उपयुक्त हैं, परन्तु आजकल नाम रखने का ढंग ही विचित्र है। बेहूदे, भद्दे और लज्जाप्रद नाम आज पढे लिखे विद्वान लोगों तक में पाये जाते हैं। श्रीहनूमानजी के नामों से लोगों को कुछ शिक्षा अवश्य ही ग्रहण करनी चाहिये।

बचपन

जिसे हम श्रीमहावीरजी का बचपन कहना चाहते हैं वह वास्तव में बचपन ही कहा जाना चाहिये। हाँ, उनकी बाल्यावस्था के कारण उस दशा को बचपन कहा जा सकता है, किन्तु कार्यों को देखकर तो यही कहा जा सकता है कि उनके कार्य वयस्क पुरुषों से भी कहीं उत्तम और बुद्धिमत्ता से युक्त होते थे। किसी ने ठीक ही कहा है कि—

"होनहार बिरवान के होत चीकने पात।"

वानरराज केसरी ने अपने पुत्र के लालन-पालन में कोई कसर नहीं उठा रखी थी। पुत्र के प्रति पिता का जो कर्त्तव्य होता है, उसका उन्होंने अच्छी तरह पालन किया। उन दिनों संतान का महत्व समझा जाता था। माता-पिता अपने उत्तरदायित्व को भली तरह समझते थे। वे लोग संतान-कामना ही से गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। जिन्हें संतान की इच्छा नहीं होती थी वे आमरण ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करते हुए अपना पवित्र जीवन व्यतीत करते थे। आजकल की भाँति काम-ज्वाला की निवृत्ति के लिये वैवाहिक कृत्य नहीं होता था। भारतवर्ष में आजकल संतान-वृद्धि देखकर उसके शुभचिंतक चितातुर हैं। संतान निग्रह की आवश्यकता समझते हैं। आज हमारे देश में लाखों नहीं करोड़ों ऐसे बच्चे हैं जो अपने माता-पिता को भाररूप है। इतनी सन्तानें उत्पन्न हो जाती हैं कि वे स्वयं उनकी वृद्धि से घबरा

उठते हैं। बहुत सोचते हैं कि इस तरह औलाद होना ठीक नहीं परन्तु बेचारे इन्द्रियसंयम न कर सकने के कारण उत्तरोत्तर भार से दबते ही चले जाते हैं। जो देश परतन्त्र हो, और जिसमें दरिद्रता का भयङ्कर ताण्डवनृत्य हो रहा हो, वहाँ की संतानें कैसी होनी चाहियें, यह बात आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। आज हम देख रहे हैं कि माता-पिता कहलानेवाले मनुष्य, अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा में असमर्थ हैं। उनका पेट भरने के लिये घर में अन्न नहीं, शरीर ढाँकने के लिये चिथड़े नहीं !! यह दशा उन दिनों हमारे देश की नहीं थी। क्योंकि हम स्वतंत्र थे, हमारा ही शासन था अतएव सब तरह की सुविधाएँ हमें प्राप्त थीं। बाल्मीकिजी ने लिखा है—

"नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्य युतानि च।
नित्यं प्रमुदिता सर्वे यथा कृतयुगे तथा॥"

उन दिनों नगर और राष्ट्र इच्छित धनधान्य से परिपूर्ण थे। त्रेता में भी लोग सतयुग की भाँति आनन्द का उपभोग करते थे।

हनूमानजी ने आश्रमवासी ऋषियों के पास विद्याभ्यास आरंभ किया। कुछ ही काल में ऋक्, यजु, और सामवेद के पूर्ण ज्ञाता हो गये। व्याकरण का कई बार उन्होंने पारायण कर डाला। वेदांग की पूर्ण शिक्षा प्राप्त की। सारांश कि हनूमान सब शास्त्रों के पंडित हो गये। विद्या पढ़ जाने के बाद हनूमानजी की भाषा इतनी शुद्ध और मधुर हो गई कि जिसकी प्रशंसा वाल्मीकि जी ने अपनी रामायण में इस प्रकार की है—

"संस्कारक्रमसम्पन्नामद्रुतामविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥"
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यञ्जनस्थया ।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासररेरपि ॥" (किष्किंधाकांड)

अर्थात्—"संस्कार के कारण सम्पन्न, न जल्दी और न अति-धीरे बोलने के दोष से रहित, हृदय को प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाली उत्तम वाणी का बोलनेवाला है। तीन स्थानों से उत्पन्न होनेवाली ऐसी विचित्र वाणी से किसका चित्त वश में नहीं आ जाता, चाहे खड्गधारी शत्रु ही क्यों न हो ?" हनूमानजी ने साधारण ही विद्याभ्यास नहीं किया वल्कि समस्त शास्त्र और मान्य ग्रंथों का अध्ययन किया था।

शास्त्राभ्यास के साथ ही साथ शस्त्राभ्यास में भी आपने निपुणता प्राप्त की। प्राचीन काल में विद्यार्थियों को युद्ध-विद्या भी सिखलाई जाती थी। किसी भी वर्ण का बालक हो, उसे युद्ध-विद्या-विषयक जानकारी प्राप्त कर लेना अनिवार्य था। क्षत्रियों के बालकों को तो सीखना पड़ता ही था, परंतु ब्राह्मण और वैश्य के बालक भी इस विद्या को सीखते थे। यह युद्ध-विद्या सिखलानेवाले भी ऋषि मुनि होते थे, जो ब्राह्मण थे। जब तक भारतीयों को सैनिक-शिक्षण मिलता रहा तभी तक हममें अपनी रक्षा करने की सामर्थ्य रही और जब से इस शिक्षण-पद्धति का लोप हुआ तभी से हमें पारतन्त्र्य की सुदृढ़ जंजीरों में बँधकर अपना गौरव, सम्मान सुख, ऐश्वर्य, धर्म, कर्म, अर्थ, मनुष्यत्व,

और प्रभुत्व दूसरों के सिपुर्द कर उनका गुलाम होकर रहना पड़ा। इस समय देश को अपनी इस गलती पर पश्चात्ताप हो रहा है और वह फिर से देश में सैनिक-शिक्षण प्रचलित करने के उद्योग में है।

हनूमानजी पवन के पुत्र थे, अतएव उनमें अपार बल था। आजकल शक्ति का माप घोड़े की शक्ति से किया जाता है और उसका माप 'हार्स पावर' (Horse Power) रखकर किसी की भी शक्ति का अनुमान किया जाता है। पहिले जमाने में हमारे यहाँ शक्ति की तुलना हाथियों की शक्ति से की जाती थी। क्योंकि "हार्स पावर" तो उन दिनों मामूली से मामूली आदमियों में थी अतएव उनसे अधिक बलवानों की शक्ति को कूतने के निमित्त "हस्तिबल" काम में लाया जाता था, जरासंध में ८० हजार हाथियों की शक्ति थी इत्यादि। परन्तु हमारे चरितनायक हनूमानजी की शक्ति इससे भी परे थी। असंख्य हाथियों का बल भी उनके आगे तुच्छ था। उनमें अपार बल था। अतुलित बल-धाम हनूमान यदि चाहते तो एक घूँसे से इस समस्त ब्रह्माण्ड को चूर्ण कर देने में समर्थ थे। वे उस वक्त समस्त ब्रह्माण्ड के बल-देवता थे।

श्रीमहावीरजी का ब्रह्मचर्य-व्रत उनके बल-वृद्धि का एक मुख्य कारण था। जितेन्द्रिय-संयमी माता-पिता की संतान भी जितेन्द्रिय और बलवान होती है। इन्द्रिय-लोलुप क्षीणकाय मनुष्यों से उत्पन्न बालक भी निकम्मे होते हैं। महावीरजी ने बचपन ही

से अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया और आजीवन ब्रह्मचारी रहने की भीषण-प्रतिज्ञा की। वास्तव में देखा जावे तो हनूमानजी ने जो कुछ भी कीर्त्ति-यश और नाम पाया, वह ब्रह्मचर्य के प्रताप ही से पाया। उन्होंने अथर्ववेद के निम्न मंत्र को सत्य सिद्ध करके दिखा दिया—

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वशभरन्॥"

हनूमानजी के बलवान शरीर में ब्रह्मचर्य ने "सोना और सुगंध" की कहावत चरितार्थ की। उन्होंने शस्त्र-विद्या का अभ्यास बड़ी लगन के साथ किया। धनुर्विद्या, तलवार चलाना, मल्लयुद्ध, मुष्टि युद्ध में बड़े विख्यात थे। हनूमानजी ने भी अपनी पैतृक विद्या में खूब योग्यता सम्पादन की। इसके अतिरिक्त आप गदा युद्ध के अद्वितीय पंडित थे। उस जमाने में आपका समकालीन कोई भी गदा-परिचालन में आपसे अधिक नहीं था। गदा-युद्ध के समय इनकी हस्तलाघवता देखकर लोग दाँतों तले अँगुली देते थे।

वानर-वंश के लोग बड़े ही चञ्चल स्वभाव के होते थे। वनवासी होने के कारण वृक्षों पर चढ़ना, कूदना, फाँदना, उछलना, खेल-कूद के समय शोरगुल मचाना, चिल्लाना इन लोगों का एक स्वाभाविक गुण सा हो गया था। यद्यपि हनूमान वृक्षों पर चढ़ने में, उछलने-कूदने में किसी भी स्वजातीय व्यक्ति से कम नहीं थे, तथापि आप बड़ी ही साधु-वृत्ति एवम् सरल स्वभाव के थे। आप

महात्मा थे। आपको अपने बल का एवम् विद्याओं का घमण्ड नहीं था। किसी ने कहा है—

"विद्या विवादाय धनम् मदाय।
शक्ती परेषां परिपीडनाया॥
खलस्य, साधो विपरीमेतत्।
ज्ञानाय, दानाय च रक्षणाय।"

दुष्ट लोग विद्या पाकर वाग्युद्ध करते हैं धन पाकर अभिमानी हो जाते है और बल पाकर दूसरों को सताने लगते हैं। परन्तु साधु पुरुष विद्या पाकर ज्ञान प्रचार करते हैं, धन पाकर उसका दान करते हैं और बल पाकर दूसरों की रक्षा करते हैं। हनूमान-जी ने अपनी विद्या और शारीरिक शक्ति का हमेशा ज्ञान और परोपकार ही में व्यय किया। बचपन ही से आप गंभीर स्वभाव के थे। आपकी जाति के लोग आपका बहुत आदर-सम्मान करते थे। इस प्रकार आपका बाल्य-जीवन बड़े ही आनन्द-पूर्वक पवित्रता से पूर्ण हुआ।

सेनापतित्व

जिस प्रकार सुगन्धित पुष्प की महँक पवन के साथ दूर दूर तक फैल जाती है उसी तरह हमारे चरितनायक के बल की और वीरता की प्रशंसा सारे देश में फैल गई। दक्षिण भारत के कुछ हिस्से पर वानर-वंशीय लोगों का राज्य था। उनकी राजधानी

का नाम किष्किन्धापुरी था। इन दिनों वाली नाम का एक अत्यन्त बलवान वानर राज्य करता था। बाली का छोटा भाई सुग्रीव भी अपने बड़े भाई की तरह योद्धा था। बाली के एक अंगद नामक पुत्र था जो अपने पिता की तरह शक्ति-सम्पन्न था। इसके अतिरिक्त बाली के मंत्री, जाम्बुवान, नल, नील, कुमुद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ, गन्धमादन आदि उनके वीर पुरुष थे। ये सभी बल में एक दूसरे से बढते थे। यद्यपि लंकाधिपति रावण का लोहा भारत के प्रायः सभी नरपतिगण मानते थे। किन्तु बालिराज अपने सामने रावण को तुच्छ मानता था। उसके बल को देखकर रावण भी घबराता था। एकाध वक्त मौका ताककर रावण ने बालि पर आक्रमण भी किया परंतु मुहँ की खाकर लौट गया। रावण का उत्पात बढा देखकर बालि ने उसे अपने यहाँ छः महीने तक कैद भी रखा। एक दिन बालि को संध्योपासना में ध्यानावस्थित देख रावण चुपके से आकर उसपर प्रहार करना चाहता ही था कि वानरराज बालि ने उसे पकड़ कर अपनी बगल में दबा लिया और जब तक संध्योंपासना करते रहे तब तक उसे नहीं छोड़ा। वह बहुत ही छटपटाया परन्तु छूट जाने का दाँव न लगा। उपासना समाप्त हो जाने पर उसे भविष्य के लिये सावधान करके बालि ने दया करके छोड़ दिया। बालि में यह एक विशेषता थी कि जो कोई शत्रु उसके सामने आता उसका आधा बल बालि में चला जाता— इतनी उसकी धाक जमी हुई थी। सारांश यह कि दक्षिण

भारत पर वानर-वंशीय लोग शासन कर रहे थे । और अपने बल के कारण संसार प्रसिद्ध थे ।

जब वानरपति बालि ने हनूमान के बल की प्रशंसा सुनी तो उन्होंने दूत भेजकर इन्हें अपने दरबार में बुलाया । सभा में आने पर बालि ने हनूमानजी का वीरोचित स्वागत-सत्कार किया और उन्हें सर्वगुण-सम्पन्न देखकर अपना मित्र बना लिया । हनूमान को मंत्री बनाकर बालि को बड़ी ही प्रसन्नता हुई, क्योंकि राज्य-व्यवस्था का अनुमान उसके मंत्रिमण्डल की योग्यता से ही किया जा सकता है । मंत्रिमण्डल यदि अच्छा रहा तो, राजा स्वयम् भले ही कैसा ही क्यों न हो, राज्य-कार्य अच्छी तरह सम्पादन होता रहेगा। इसी लिये पहिले समय में राजा लोग मंत्रियों के चुनाव में बड़ी ही सावधानी से काम लेते थे । यही कारण था कि उन दिनों राजा-प्रजा बाप-बेटे की तरह हिल-मिल कर रहा करते थे। वानर-वंशीय लोगो के विषय में तो नहीं किन्तु अन्यान्य तत्कालीन राजाओं के विषय में यह कहा जा सकता है कि उनके मंत्रिमण्डल में ऋषि-मुनियों की प्रधानता रहती थी । महाराजा दशरथजी के १५ मंत्रियों में से सात मंत्री वेदज्ञ ऋषि मुनि थे । वसिष्ठ, गौतम, वामन, कात्यायन, मार्कण्डेय, जाबालि और सुयज्ञ नामक सप्तऋषि उनके राज्य-प्रबन्ध एवम् राज्य-संचालन के लिये उनके मंत्रिमंडल में कार्य करते थे । भला धार्मिक मंत्रियों के होते राजा कैसे धर्मच्युत हो सकता है ? यही कारण है कि वाल्मीकि ऋषि ने राजा दश-

रथ के राजकाल का वर्णन बड़े ही अच्छे शब्दों में किया है—

'तस्मिन्पुरवरे हृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुताः ।
नरास्तुष्टाधनैः स्वैः स्वैरलुब्धा सत्यवादिनः ॥
कामी वान कदर्यों वा नृशंसः पुरुषः क्वचित् ।
द्रष्टुमशक्यमयोध्यायां नाविद्वान्न च नास्तिकः ॥
सर्वे नराश्च धर्मशीलः सुसंयुताः ।
मुदिताशीलवृत्ताभ्यां महर्षय इवामलाः ॥
दीर्घायुषो नरा सर्वे धर्म सत्यं च संश्रितः ।
सहिताः पुत्र पौत्रैश्च नित्यंस्त्रीभिः पुरोत्तमे ॥

जहाँ की राज्य-व्यवस्था निर्दोष हो, समझ लेना चाहिए कि वहाँ का मंत्रिमंडल योग्य है। इसके विपरीत जिस राज्य की प्रजा-दुखी और अत्याचार-पीड़िता हो समझ लेना चाहिए कि उसके शासन का मन्त्रिमण्डल अयोग्य है। आज हम ध्यानपूर्वक देखें तो हमारे देशीनरेशों की बदनामी एवम् उनके पतन का कारण उनके चाटुकार अदूरदर्शी एवम् अयोग्य मंत्रियों ही को पावेंगे।

महाराजा बालि के मंत्रिमण्डल में पहिले ही से एक से एक योद्धा और विद्वान् सुचतुर मंत्री थे और हनुमानजी के आते ही बची खुची जो न्यूनता थी वह भी पूरी हो गई। बालि भी हनूमान की बुद्धिमानी और साधु-स्वभाव पर इतना मुग्ध हो गया कि बिना उनकी सलाह के वह किसी भी कार्य में हाथ नहीं डालता था। बालि ने जब श्रीमहावीरजी को अपना विश्वास-पात्र मंत्री पाया तो उन्हें अपनी समस्त राज्य-सेना का मुख्य

सेना-नायक पद देकर उनके बल और योद्धापन का सम्मान किया महावीरजी ने सेनाओं में बहुत कुछ सुधार किया और समस्त राज्य की सेनाओं को एक आदर्श सेना का रूप दे दिया। उन्होंने उन्हें इतनी अच्छी तरह से सैनिक-शिक्षण दिया कि ये अपने से दस गुनी अधिक सेना से युद्ध करके भी विजयी हो सकते थे।

हनुमानजी के आने के बाद बालि के राज्य में कई सुधार हुए। सब प्रजा सुखी रहने लगी। कई जगह नये दुर्ग भी निर्माण किए गये। इस प्रकार राज्य का सुसंगठन देखकर बालिके शत्रु गण साहस छोड़ बैठे। वे कभी बालि के राज्य पर आक्रमण करने की इच्छा तक भी नहीं करते थे। किष्किंधा नगरी में हनूमानजी समुचित आदर सम्मान के साथ आनन्दपूर्वक निवास करने लगे।

शनि की साढ़सती

ज्योतिषशास्त्र की गणनानुसार मनुष्य के जीवन में प्रत्येक ग्रह की दशा उसे आती है। कहते हैं उससे कोई भी नहीं बच पाता। ग्रहों की दशाओं के अनुरूप ही मनुष्य सुख-दुःख, हानि-लाभ पाता है। शेष आठ ग्रहों की अपेक्षा शनिग्रह की दशा बड़ी ही भयानक मानी जाती है। कहते हैं जिस किसी को शनि की दशा आती है उसे कुछ न कुछ हानि अवश्य ही सहनी पड़ती है। जब

कि जीवन में प्रत्येक ग्रह की दशा आना अनिवार्य है तो भला फिर हनूमानजी कैसे बच सकते थे। उन्हें भी शनिदेव की दशा साढ़े सात साल के लिये आई।

एक कहावत है कि बलवान से सभी डरते हैं। श्रीहनूमानजी के पराक्रम को देखकर शनि भगवान् का भी हृदय काँपने लगा। ग्रहों के आदि ग्रह सूर्य ही को जिसने नष्ट कर देने के लिये अपने बचपन ही में एक लम्बी उड़ान मारी थी तो इस यौवन प्राप्त शरीर के द्वारा शनि को अपना जीवन सङ्कटापन्न दिखाई पड़ने लगा। उन्होंने सबसे उत्तम सुरक्षित उपाय यही समझा कि श्रीमहावीरजी की सेवा में उपस्थित होकर अपनी सब बातें उन्हें निवेदन कर दी जावें। ऐसा सोचकर एक दिन बड़ी हिम्मत बाँधकर शनिजी हनूमानजी के पास आये और हाथ जोड़ कर बोले—

"महाराज ! क्षमा कीजिए, राशिचक्रानुसार अब मेरा नम्बर आता है। अतएव मैं आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ, कहिए क्या आज्ञा है ?"

शनिदेव की बातें सुन हनूमानजी ने पछा—

" क्या यह राशि-चक्र अटल है ? और क्या आपकी दशा में प्राणियों को कष्ट ही भोगने पड़ते हैं ? सुख नहीं होता ?"

शनि ने कहा—

"हाँ मेरा तो यही अनुमान है कि दशाओं का आना अनिवार्य है और मेरी पारी में दुःखों का होना भी एक अटल

बात है। नियम ही ऐसा रखा गया है। हमें कार्य ही यह दिया गया है। विवश हैं—हम क्या कर सकते हैं।"

यह सुन हनूमानजी ने मुस्कुराते हुए कहा—

"शनिजी ! अच्छा हो यदि आप मुझे क्षमा कर सकें। मुझे तो आपकी दृष्टि से बचाइये।"

शनि ने कहा—"मैं असमर्थ हूँ, आपकी आज्ञा नहीं मान सकने का मुझे स्वयं खेद है।"

यह सुन हनूमान बोले—"तो मैं आपसे अधिक अनुरोध करना भी नहीं चाहता। जो आप चाहें सो करें। आप अपने कर्त्तव्य-कर्म का पालन करें। मैंने सुना है कि आप सिर से पधारते हैं। अतएव आइये पधारिये मेरे सिर पर आप सहर्ष पदार्पण कीजिये।"

हनुमानजी की ऐसी बातें सुनकर शनिजी महाराज उनके सिर पर बैठ गये। कुछ ही दिन बीते होंगे कि शनि की कृपा से हनूमानजी के लिये अनिष्ट उत्पन्न होने लगे। उनका चित्त उद्विग्न रहने लगा, कार्यों में असफलता होने लगी। यह देखकर हनूमानजी ने सोचा कि "अभी तो दिन ही बीते हैं, साढे सात वर्ष कहते हैं किसे ? जैसे बने तैसे शनि से अपना पिंड छुड़ाना ही ठीक है।" यह सोचकर वे जंगल में गये और वहाँ बड़ा भारी पहाड़ उठाकर अपने सिर पर रख लिया। सिर पर बैठे हुए बेचारे शनि घबराये, किन्तु हाय तोबा मचाना ठीक न समझकर उस पर्वत के भार को सहने लगे। जब हनमानजी

देखा कि इतने वजन से तो शनिजी नहीं घबराये तब उन्होंने एक दूसरा पर्वत उठाकर सिर पर और रख लिया। अब तो शनिजी वजन के कारण बुरी तरह पिचक गये। दम निकलने लगा। वे हनुमानजी से प्रार्थना करने लगे—"प्रभो! मैं जाता हूँ! आप पहाड़ों को हटा दीजिये। कृपाकर जल्दी उठाइये, नहीं तो मेरे प्राण अब निकलना ही चाहते हैं।"

यह सुनकर हनुमानजी ने, एक पहाड़ और उठाकर अपने माथे पर रख लिया। अब तो शनीदेव घबराने लगे और गिड़ गिड़ा-कर बोले—"हे पवनात्मज मुझे बचाओ मैं मरा। रक्षा करो मेरी रक्षा करो मैं आपकी शरण हूँ। इन पहाड़ों को जल्दी हटाइए नहीं तो मैं मर जाऊँगा। मैं जाता हूँ अब कभी आपपर फिर न आऊँगा।" शनि की ये बातें सुन बलपुंज महावीरजी ने हँसकर कहा—"महाराज! मैंने तो पहिले ही निवेदन किया था कि आप मुझे छोड़ दें। किन्तु आपने कहा कि मेरा आना तो अनिवार्य है—अटल है। तो फिर विराजिये अभी तो कुछ ही दिन बीते हैं आपको तो मेरे साथ साढ़े सात वर्ष रहना है।"

शनिजी ने हाहा खाते हुए कहा—"भगवन्! आप बातचीत में वक्त न गुजारिये, क्योंकि मुझे तो एक क्षण भी भारी हो रहा है। आपने यदि विलम्ब लगाया तो मेरा प्राण निकल जावेगा। दया करो, अपराध क्षमा करो। मैं आपकी शरण हूँ। फिर कभी आपके साथ ऐसा वर्त्ताव भूलकर भी स्वप्न में नहीं करूँगा। छोड़ दो! मैं जाता हूँ।"

हनूमान ने कहा—"मेरी तो यह आन्तरिक इच्छा थी कि स्वामी ७॥ साल रहते। परन्तु यदि आप जाना ही चाहते हैं तो, जाइये परन्तु इन पहाड़ों को अपने सिर पर से तब दूर करूँगा, जब कि आप मेरी शर्त्तों को स्वीकार कर लें।

शनिजी ने घबराते हुए कहा—"जो कुछ भी शर्त्तें हों शीघ्र ही कहिये मैं मानूँगा, अवश्य मानूगा। आपकी सब आज्ञाएँ मुझे मंजूर हैं। आप तो इन पहाड़ों को पहिले हटा दीजिये। सब नहीं तो एक ही हटा दो।"

हनूमानजी ने कहा—एक नहीं मैं सभी पहाड़ अभी हाल हटाये देता हूँ किन्तु आप मेरी यह शर्त्त स्वीकार कर लें कि "आप मुझे तो आवेंहीगे नहीं, किन्तु यह कहो कि मैं तुम्हारे भक्तों को भी कभी नहीं आऊँगा अर्थात् उन्हें अपनी दशा में कुछ भी कष्ट नहीं पहुँचाऊँगा। कहिये है स्वीकार ?"

शनिजी ने कहा—"स्वीकार, एक बार नहीं हजार बार स्वीकार। अब तो आप इन पहाड़ों को जल्दी ही हटा दीजिये।"

इस प्रकार प्रतिज्ञा कराके हनूमानजी ने अपने सिर पर से पहाड़ों को कटाकर यथास्थान रख दिये, और शनिदेव ने छुट्टी पाई। सिर से उतरकर शनि ने हाथजोड़ हनूमान की स्तुति की और पूछा—

"भगवन्। जब आप पैदा हुए थे तब भी तो आपको मेरी ही दशा थी उस समय तो आप मुझपर इतने क्रुद्ध नहीं हुए थे ?"

हनूमान बोले—"शनिजी ! उस समय मैं बालक था, कुछ समझ नहीं सकता था, इसीलिये आपका मुझ पर दाँव चल गया, अन्यथा यही दशा उस समय भी की होती !"

शनिजी ने अपने जीवनदान के लिये हनुमानजी को अनेकानेक साधुवाद दिये और अपने अपराधों की स्निग्ध वचनों द्वारा शनि को सान्त्वना दी। शनिदेव प्रणाम कर अपने लोक को चले गये। इस तरह हनुमानजी ने अपनी आयु के २३ वें वर्ष में शनिग्रह से पिंड छुड़ाया। नहीं तो ३०—३१ वर्ष अवस्था तक यह साढ़सती उनका पीछा न छोड़ती।

हनूमानजी ने अपनाही पीछा नहीं छुड़ाया बल्कि अपने भक्त को भी उनके चंगुल से मुक्त करा दिया। साधु पुरुषों को जितना, दूसरों का ध्यान होता है उतना खुद का नहीं होता। यही कारण है कि हनूमानजी ने अपने ही साथ साथ अपने अनुयायियों को भी दुःखरहित बना दिया।

महाराजा बाली से मतभेद

मय नामक राक्षस के दो पुत्र मायावी और दुंदुभि थे। ये दोनों ही बड़े बलवान थे। इनको अपने बल का बड़ा ही घमण्ड था। जो कोई भी इन्हें बलवान दिखता उससे अकारण ही माथा-फोड़ी कर बैठते। जहाँ जाते वहीं "आ बैल मुझे मार" की कहा-

वत को चरितार्थ करते। एक दिन दुन्दुभि समुद्र के किनारे गया और समुद्र में उतरकर उसके पानी को मथने लगा। वह सारे समुद्र में घूम आया परन्तु कमर से अधिक गहरा उसे कहीं नहीं मिला। यह देखकर उसका अभिमान और भी बढ़ गया और पूर्वापेक्षा अधिक क्रोध से समुद्र को बिलोने लगा। उसके इस उत्पात से समुद्र के जलजंतु घबरा उठे, सैकड़ों जीव निर्जीव हो गये। यह देखकर वरुणदेव ने कहा—

"राक्षसराज! व्यर्थ ही मुझे क्यों सताते हो? मैं तुम्हारी शक्ति सहने में असमर्थ हूँ। कृपा करके किसी बराबरवाले बलवान से भिड़िये। मुझपर दया कीजिये।"

वरुण की बातें सुन दुन्दुभि हँसा, और कहने लगा—

"अच्छा तो तुम्हीं कहो, मुझे किससे लड़ना चाहिये। कौन मेरी बराबरीवाला है?"

वरुण ने कहा—"हिमगिरि अत्यंत बलवान है, तुम उससे जाकर युद्ध करो। वह तुम्हारी जोड़ का है।"

यह सुनते ही वह राक्षस हिमगिरि के पास आया और उसे देखकर मनही मन बड़ा खुश हुआ। आते ही उसने ताल ठोंककर हिमाचल को उठा लिया और उसे पटककर चूर्ण करना ही चाहता था कि पर्वतराज ने प्रार्थना कर कहा—"मुझे क्षमा करो। मैं आपकी बराबरी नहीं कर सकता। यदि तुम्हें युद्ध की ही इच्छा है तो दक्षिण दिशा में किष्किन्धा जाइए और वहाँ के राजा बालि से युद्ध कर अपनी इच्छा पूर्ण कीजिये।"

यह सुनकर राक्षस ने हिमाचल को तो छोड़ दिया और यहाँ से सीधा किष्किन्धा के लिये चल पड़ा। यहाँ पहुँचकर उसने बालि को युद्धार्थ ललकारा। बालि भी कम नहीं था, वह नगर के बाहर उस राक्षस से लड़ने के लिए आ पहुँचा। वज्र-शब्द की तरह ताल ठोंकने के शब्दों को करते हुए दोनों वीर मतवाले हाथियों की तरह मल्ल युद्ध करने लगे। लाखों की संख्या में लोग वहाँ तमाशा देखने के लिए इकट्ठे हो गए। लगातार तीन दिन तक युद्ध होने के बाद चौथे दिन बाली ने उस राक्षस को धर दबोचा और काम तमाम कर दिया। बालि ने उसको बीच में से चीरकर एक हिस्सा उत्तर दिशा में और एक दक्षिण में फेंक दिया एक टुकड़ा ऋष्यमूक पर्वत पर मतंग ऋषि के आश्रम में जा पड़ा ऋषि वहाँ नहीं थे, वे स्नानार्थ बाहर गये हुए थे। लौटकर जब उन्होंने अपने आश्रम को रक्त-मांस से पूर्ण और वृहदाकार अर्द्ध शरीर देखा तो वे बड़े क्रुद्ध हुए। एक यक्ष ने ऋषि से सब वृत्तान्त कहा। तत्काल ही ऋषि ने बालि को शाप दिया कि—"रे दुष्ट! जब कभी तू इस पर्वत को देखेगा तभी तू भस्म हो जावेगा।"

अपने भाई दुन्दुभी के मरने का समाचार पाकर मायावी ने बालि को युद्ध के लिये ललकारा। राक्षस लोग रात्रि में युद्ध करना पसन्द करते हैं। रात्रि में उनका बल विशेष बढ़ जाता है क्योंकि अन्धकार में छल-कपट-माया अच्छी तरह रची जा सकती है। ठीक आधी रात के वक्त मायावी ने आकर कपिराज बालि के महलों के मुख्य द्वार पर युद्धार्थ आवाज दी। महाबल-राशि बालि

अपने शत्रु की ललकार सुनकर उसी समय हाथ में गदा लिए अपने महलों से निकल पड़ा। अपने बड़े भाई को इस प्रकार शत्रु के सामने, रात्रि में अकेला जाते देखकर सुग्रीव भी गदा उठाये उनकी सहायतार्थ आ पहुँचा। नगर के बाहर आकर बालि और मायावी में द्वन्द-युद्ध होने लगा। बालि की चोटों से वह राक्षस घबड़ा गया और भागकर एक पर्वत की कन्दरा में घुस गया। अपने शत्रु को कन्दरा में घुसा देख कपिराज बाली ने अपने छोटे भाई सुग्रीव को समझाकर कहा—

"मैं इसके साथ कन्दरा में घुसूँगा और इसे अवश्य मारूँगा। क्योंकि शत्रु को जीवित छोड़ना मूर्खता है। यह राक्षस बलवान है—मुझे इसके मारने में अधिक से अधिक पन्द्रह दिन लगेंगे। इसका कन्दरा में जाकर छिपना मुझे सन्देह में डालता है। खैर, तुम इस कन्दरा के द्वार पर पन्द्रह दिन तक ठहरना—यदि मैं पन्द्रह दिन में न लौटूँ तो समझ लेना कि मैं मारा गया।"

ऐसा कहकर बाली शीघ्रतापूर्वक उस कन्दरा में घुस गया। सुग्रीव कंदरा के द्वार पर हाथ में गदा लिये पन्द्रह दिन तक अपने बड़े भाई की मार्ग-प्रतीक्षा करता रहा। परन्तु बालि नहीं लौटा। सुग्रीव को वहाँ अपने भाई की राह देखते देखते एक महीना हो गया परन्तु वह नहीं लौटा *। हाँ एक बात हुई कि कन्दरा से

---

* वाल्मीकि रामायण में लिखा है कि "बाली एक वर्ष तक नहीं लौटा।" परन्तु "अध्यात्म रामायण" में "इत्युक्त्वा विवेश गुहामास-

बहकर रक्त बाहर आने लगा। खून देखकर सुग्रीव को निश्चय हो गया कि मेरा बड़ा भाई बालि उस राक्षस के द्वारा मारा गया और अब वह आकर मुझे भी मार डालेगा। ऐसा सोचकर उस गिरि-गुहा के द्वार पर एक सुदृढ़ शिला, खूब अच्छी तरह जमा दी, जिससे वह राक्षस बाहर न निकलने पावे। बाद में सुग्रीव ने आकर नगर में कहा कि बालि को उस राक्षस ने मार डाला।" सारे नगर में शोक छा गया। सुग्रीव स्वयं चिन्तातुर और उदासमुख रहने लगा।

राज-गद्दी को सूनी देखकर मन्त्रि-मण्डल ने सुग्रीव को राज्यासन पर बिठाया। सुग्रीव ने बहुत कुछ इन्कार किया और अंगद को राजतिलक कर देने की सलाह दी परन्तु नगर-निवासियों ने तथा मंत्रियों ने सुग्रीव की एक भी नहीं सुनी और उनका राज्याभिषेक कर दिया। कुछ दिनों बाद बाली उस राक्षस को मारकर अपनी राजधानी में आये। सुग्रीव को राज्यासनारूढ़ देखकर उनके शरीर में एँड़ी से चोटी तक क्रोध ज्वाला भभक उठी। उन्होंने आगा-पीछा कुछ भी नहीं सोचा और सीधे सुग्रीव के पास जाकर उसे खूब मारा-पीटा, नगर से बाहर निकाल दिया और उसकी स्त्री रूमा को भी उससे छीनकर अपनी रानी बना लिया। प्रजा के लोगों ने और मंत्रियों ने बाली को कई तरह समझाया और सिद्ध

मेकं ननिर्ययौ।" लिखा है। हमारी समझ में भी एक महीना ही उचित मालूम होता है।—लेखक

किया कि सुग्रीव बिलकुल निर्दोष है, परन्तु उसने एक की भी नहीं मानी। श्रीहनूमानजी ने भी बालि से एकान्त में लेजाकर कहा—

"वानेरन्द्र! आप क्रोध को त्याग दीजिये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि सुग्रीवजी बिलकुल निर्दोष हैं। उन्होंने आपके कहे पन्द्रह दिनों के बजाय एक महीने तक वहाँ आपकी राह देखी। और यदि कन्दरा से रक्त बहकर न आता तो शायद वे और भी ठहरते। उन्हें यह निश्चय हो गया कि "मेरे भाई को मारकर, वह राक्षस अब मुझे तथा अन्य वीरों को भी मारेगा।" इसलिये उन्होंने कंदरा के द्वार को बन्दकर दिया। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमलोगों के बहुत अनुरोध करने पर ही उन्होंने राज्यभार ग्रहण किया था। अतएव वे निश्चयपूर्वक निर्दोष हैं, जो कुछ भी उनकी थोड़ी बहुत भूल है, उसके लिये आप उन्हें क्षमा करें, और उन्हें अपने राज्य में बुलाकर उनके स्त्री पुत्र उन्हें लौटा दें। आप बड़े हैं, वह आपका छोटा भाई है। उस पर दया करना आपका धर्म है।"

हनूमानजी की बातों का बाली के हृदय पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वह बोला—

"आंजनेय! आप नहीं जानते, वह बड़ा चालाक है। वह तो यह चाहता ही है कि कब बाली मरे और कब मैं राजा बनूँ। आप इस विषय में मुझसे अधिक कुछ न कहें। मैं इस बारे में आपकी एक भी नहीं सुनूँगा।"

हनूमान बोले—"राजन्! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि

इस विषय में आप फिर विचार करें। सुग्रीव निर्दोष हैं। यदि आप उनके प्रति ऐसा अन्याय करेंगे तो जनता आपके विरुद्ध न हो जाय, इसकी मुझे आशंका है। आपका मंत्रि-मण्डल ही आपके इस व्यवहार की निन्दा कर रहा है और मैं समझता हूँ कि यदि आपने अपनी भूल नहीं ठीक की तो आपके कई मंत्री सुग्रीव का साथ देंगे। इसलिये, पहिले ही से सँभल जाना ठीक है।"

बाली बोला—"हनूमानजी! मुझे इसकी पर्वाह नहीं, जनता और मंत्रिमण्डल भले ही मेरा साथ छोड़ दें, परंतु मैं सुग्रीव का वध किये बिना कदापि नहीं रहूँगा।"

बाली के इस प्रकार कड़े वाक्य सुनकर हनूमान वहाँ से चल दिये। उन्होंने निश्चय किया कि "सुग्रीव के साथ बाली अन्याय कर रहा है और वह इस समय बिलकुल असहाय है अतएव मुझे सुग्रीव का साथ देना चाहिये।" ऐसा सोचकर श्रीहनूमानजी सुग्रीव के पास पहुँचे। उन्होंने राज्यैश्वर्य को पैरों से ठुकराकर अपना कर्त्तव्यपालन किया। पाप से अपने को बचा-कर, धर्म को अपने हृदय से लगाया। सुग्रीव के घोर संकट में सबसे पहिले साथ देनेवाले, धर्मात्मा श्रीहनूमानजी ही थे। हनूमान को सुग्रीव की तरफ झुका देखकर जाम्बवन्त नामक वृद्ध मंत्री ने भी बाली का साथ छोड़ दिया और सुग्रीव के पास आकर रहने लगा। इस प्रकार कई प्रजाजन भी सुग्रीव के पास आ गये। अपने पक्ष पर कुछ लोगों को देखकर सुग्रीव को धैर्य हुआ।

विशेषतः महावीरजी को अपना पक्षपाती देख, उसके हर्ष का कुछ वारापार ही नहीं रहा।

हनूमानजी की सलाह से सुग्रीव ने ऋष्यमूक पहाड़ पर निवास करने का निश्चय किया। मातंग ऋषि के शाप के कारण, बालि इस पहाड़ की ओर देख तक नहीं सकता था। इतने पर भी बालि ने सुग्रीव को मार डालने में कुछ उठा न रखा। उसने कई बलवान योद्धाओं को ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव को मारने के लिये भेजा किन्तु, हनूमान जैसे योद्धा के आगे सुग्रीव का वे बाल भी बाँका नहीं कर सके। बालि ने श्रीहनूमानजी को राजद्रोही, अराजक घोषित कर दिया। अनेक कष्टों को सहकर भी हनूमान ने सत्य और धर्म को नहीं छोड़ा।

श्रीराम-दर्शन

अयोध्या के राजा दशरथ जी ने अपने बड़े पुत्र श्रीरामचन्द्र जी को अपनी एक रानी कैकेयी के कहने से चौदह वर्ष का वन-वास दिया था। श्रीरामजी के साथ उनके छोटे भाई लक्ष्मण और उनकी पत्नी श्रीमती सीता देवीजी वन में आई थीं। यों तो पहिले ही से श्रीरामजी की रावण से शत्रुता हो चुकी थी, परन्तु वनवास के दिनों में यह शत्रुता दिनों दिन बढ़ती ही चली गई। क्योंकि श्रीरामजी का जन्म पापियों के दमन करने ही को हुआ था।

उनके जीवन का मुख्य उद्देश 'पाप को नष्ट करना और धर्म की रक्षा करना' था। अपने वनवास के समय में जो जो पापी उनके आगे आये, उन सबका उन्होंने नाश किया। श्रीराम को अपनी प्रियतमा सीता और लक्ष्मण के साथ वनवास करते वर्षों व्यतीत हो गये। दस वर्ष पूर्ण होने पर वे दण्डक वन की गोदावरी नदी के किनारे आये और वहीं पर एक उत्तम कुटी बनाकर आनन्दपूर्वक रहने लगे।

दण्डक वन में लंकाधिपति रावण की एक बड़ी फौज रहती थी। उस सेना के नायक खर और दूषण नामक दो अत्यन्त बलवान राक्षस थे। रावण की बहिन सूर्पनखा योगात् एक दिन रामचन्द्र जी की कुटी की ओर आ निकली, इन रूप यौवन सम्पन्न वीर धीर, दोनों भाई राम और लक्ष्मण को देखकर, उसका मन मुट्ठी से निकल गया। वह उनके पास पहुँची और अपने को पत्नी बनाने के लिए एक पत्नीव्रती धर्मात्मा रामजी से अनुरोध करने लगी। उसने बहुत ही हठ किया, परन्तु उसकी बात दोनों भाइयों में से एक ने भी स्वीकार नहीं की। जब वह बहुत ही बढ़ गई और किसी के कहने सुनने पर कुछ भी ध्यान न देने लगी, तब अपने भाई का इशारा पाकर लक्ष्मणजी ने उस राक्षसी के नाक कान काट डाले। यह देखकर खर-दूषण ने चौदह हजार राक्षसों को ले रामचन्द्रजी पर धावा किया। देखते-ही-देखते सब राक्षसों को अकेले राम ही ने मृत्यु के सिपुर्द कर दिया। वह सूर्पनखा दौड़ी हुई अपने भाई के पास लंका में पहुँची और सब हाल कहा। रावण तो

इस ताक में था ही। उसने मारीच को मृग बनाया और खुद योगी के वेष में दण्डकारण्य में आ पहुँचा। इस कपट-मृग मारीच को मारने जब दोनों भाई चले गये तो रावण कुटी में सीतादेवी को अकेली देख उन्हें ले भागा और अपनी लंका में ले जाकर, अशोक-वाटिका में रखा।

इधर जब मृग को मारकर श्रीराम अपने भाईसहित लौटे तब सीता को वहाँ न देख बड़े ही दुखी हुए। अपनी भूल पर पछताते हुए दोनों सीताजी की खोज में वहाँ से चल पड़े। कुछ पता लगाते हुए वे किष्किन्धा नगरी के समीपस्थ ऋष्यमूक पर्वत की ओर चल पड़े। पम्पा नदी के समीप पहुँचकर दोनों भाई वहीं ठहर गये। इधर ऋष्यमूक पर बैठे हुए वानरराज सुग्रीव की दृष्टि इन दोनों भाइयोंपर पड़ी। उन्होंने हनुमानजी से कहा—

"महावीर! देखो तो वे दोनों कौन हैं? कोई तेजस्वी पुरुष मालूम पड़ते हैं। धनुष-वाण उनके कन्धों पर हैं, तलवार उनके कमर में लटक रही है। और भी दूसरे हथियार धारण किये हैं। मुझे भय होता है,—कहीं बाली ने तो उन्हें मुझसे युद्ध के लिए नहीं भेजा है?"

हनूमान ने कहा—"राजन्! भय करने की कोई आवश्यकता नहीं। हम लोग आपके पसीने की जगह रक्त बहाने को तैयार हैं। हमने यावज्जीवन आपकी सहायता करने की प्रतिज्ञा कर ली है। पहले हम अपना शरीर आपकी सेवा में त्याग देंगे, पश्चात् आप पर आपत्ति आवेगी। आप इतने न घबराइये।

सुग्रीव बोले—"आंजनेय ! मुझे आप लोगों से ऐसी ही आशा है। परन्तु बुद्धिमानी इसी में है कि भय उपस्थित होने के पहिले ही उससे बचने का उपाय किया जाय। अतएव आप कृपा करके अपना वेष बदलकर उनसे मिलिये और उनके दिल की बात पूछकर, सच्चा रहस्य मालूम कीजिये।"

हनूमानजी ने कहा—"आप इतने भयभीत न हों। मैं अभी गुप्त रीति से सब बातों का भेद लगाकर आता हूँ।"

इतना कह हनूमान वहाँ से चल दिये, और ब्राह्मण का वेष बना कर श्रीराम और लक्ष्मण के पास पहुँचे। उनको अत्यन्त विनीत भाव से प्रणामकर कहने लगे:—

राजर्षिदेव प्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ।
देशंकथमिमं प्राप्तौ भवन्तो वरवर्णिनो॥
पद्मपत्रेक्षणौवीरौ जटामण्डल-धारिणौ।
अन्योन्य सदृशौवीरौ देवलोकादिहागतौ॥

(वाल्मीकि रामा०)

राजर्षि और देवताओं के समान तेजवाले, तपस्वी और ब्रह्मचारी आप यहाँ कैसे आये ? कमल के समान नेत्रवाले, जटाधारी, दोनों एक दूसरे के अनुरूप ! क्या आप देवलोक से आ रहे हैं ?

"को तुम श्यामल गौर शरीरा। क्षत्रिय रूप फिरहु बन वीरा ?

लक्ष्मणजी ने कहा"—पहिले आप कहिये, कि आप कौन हैं और आप किसलिये पूछते हैं ?"

हनूमान ने कहा—महात्मन् ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि इस पम्पा नदी के तट की और वनस्थली की शोभा बढ़ाते हुए तप्त स्वर्ण समान शरीरवाले, दिव्य धनुषों को धारण किये, धैर्य के स्वरूप, सिंह समान बलवान, आप दोनों इधर कैसे पधारे हैं ?

लक्ष्मणजी बोले—हे द्विजवर्य ! आप ऐसा प्रश्न क्यों करते हैं ? क्या आप किसी के भेजे हुए दूत हैं ? हनूमानजी ने कहा—

सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरपुंगवः ।
वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद्भ्रमति दुःखितः ॥
प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः ॥

एक सुग्रीव नामक वानरराज अपने भाई के अन्याय से दुखी संसार में भटक रहा है । मैं उन्हीं का भेजा हुआ हनुमान नामक वानर हूँ । वह धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनों से मैत्री चाहता है वह बड़ा ही धर्मज्ञ एवम् विद्वान है और मैं उसका मंत्री हूँ ।"

हनुमान की ये बातें सुनकर राम ने लक्ष्मण से कहा । लक्ष्मण ! देखो, यह सुग्रीव का मंत्री कैसा चतुर एवम् विद्या-सम्पन्न है ।

'नानृग्वेद विनीतस्य ना यजुर्वेदधारिणः ।
ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्न मनेन बहुधाश्रुतम् ।
बहुव्याहरतानेन न किञ्चिदपशब्दितम् ॥
संस्कार क्रम सम्पन्ना मद्रुताम विलम्बिताम् ।

उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहर्षिणीम् ॥
एवम् गुणगणैर्युक्तः यस्यस्युः कार्यसाधकाः ।
तस्य सिध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्यप्रचोदिताः ॥

यह निश्चय है कि यह वेद-वेदांगों का पूरा ज्ञाता है, क्योंकि बिना चारों वेद जाने इस प्रकार कोई बोल ही नहीं सकता। यह एक मानी हुई बात है कि इसने व्याकरण अनेक बार पढ़ा है। यह बड़े ही सभ्य सुशिक्षित तथा संस्कार करनेवाले माता पिता का धर्मात्मा बालक है। क्योंकि इसके मुँह, आँख, ललाट और भौंहों में बोलते समय किसी प्रकार का दोष नहीं दीख पड़ा। इतनी देर बोलते रहने पर भी इसके मुख से एक भी अशुद्ध शब्द नहीं सुनाई नहीं दिया। कैसी स्पष्ट, उत्तम और प्रिय वाणी बोलता है। भला जिसका दूत ऐसा सर्वगुण सम्पन्न हो उसका कौन सा कार्य ऐसा है जो सिद्ध नहीं हो सकता ?"

राम के मुख से हनुमान की प्रशंसा सुन लक्ष्मण ने हनुमान से कहा—

"भद्र ! हम रघुवंशी राजा दशरथ के पुत्र हैं। पिताजी की आज्ञा मानकर वन में आये थे। मेरे ज्येष्ठ बन्धु इन श्रीरामचन्द्रजी की प्रिय पत्नी सीता को राक्षस ने चुराया है। हम दोनों उसी की खोज में आज कई दिनों से वन-वन घूम रहे हैं। कबन्ध राक्षस ने हमें वानरराज सुग्रीव की सहायता से सीता को ढूँढने की सलाह दी है। हनुमान ! हमारा कुल और बल विश्वविख्यात है तथापि

इस वक्त सीता के हरे जाने के कारण मैं और श्रीरामजी दोनों सुग्रीव के शरणागत हैं। आप हमें अवश्य शरण में लेवें।

"सीतायस्यस्नुषा चासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः।
तस्यपुत्रः शरण्यस्य सुग्रीवं शरणं गतः॥"

लक्ष्मण के इन दीन वचनों को सुन, हनुमानजी का हृदय समवेदना से भर आया। वे कहने लगे—

"राघव! आप जैसे बुद्धिमान, क्रोधरहित, और जितेन्द्रिय पुरुषों का दर्शन पाकर सुग्रीव कृतकृत्य होगा। हमारे बड़े भाग्य हैं जो आपके दर्शन हुए। सुग्रीव राज्यच्युत है। उसका बड़ा भाई ही उसके खून का प्यासा है। उसके बाल-बच्चे स्त्री-पुत्र कलत्र सब कुछ उसने हरण कर लिया है, केवल वस्त्रमात्र देकर उसे घर से निकाल दिया है। इस पहाड़ पर वह अपने भाई के डर से रहता है। शापवश इस जगह बाली आ नहीं सकता। आप चलिए, सुग्रीव आपकी अवश्य सहायता करेगा।

महावीर के ऐसे धीरज बँधानेवाले वाक्यों को सुनकर दोनों भाइयों का दुःख कुछ हल्का हुआ। बाद में हनुमान ने दोनों हाथ जोड़कर उनसे ऋष्यमूक पर चलकर रहने तथा सुग्रीव से मित्रता करने की प्रार्थना की। हनुमान की सम्मति ठीक मानकर दोनों भाई उनके साथ सुग्रीव के पास पहुँचे। सुग्रीव ने अपने मंत्रियों और साथियों सहित उठकर राम लक्ष्मण का स्वागत-सत्कार किया और बैठकर आपस में बातचीत करने लगे।

सीता की खोज

श्रीरामजी ने अपनी दुःखगाथा कही और सुग्रीव ने उन्हें अपना सारा दुःख कह सुनाया। दोनों ने आपस में मैत्री करने का निश्चय किया। इनका पक्का इरादा देखकर हनुमान ने यज्ञवेदी पर समिधायें रखीं और मन्थनदण्ड से अरणि को घिसकर अग्नि प्रज्वलित की। हनुमान ने तथा अन्य उपस्थित सज्जनों ने वेद मंत्रों का उच्चारण किया। इस प्रकार विधिपूर्वक परमात्मा को साक्षी कर राम और सुग्रीव ने मित्रता जोड़ी।

सुग्रीव ने अपना दाहिना हाथ फैलाया तब श्रीराम ने भी दाहिना हाथ बढ़ाकर उसके हाथ को प्रेमपूर्वक ग्रहण किया। दोनों ने अग्नि की प्रदक्षिणा की, फिर प्रेमपूर्वक आपस में मिल-कर एक आसन पर बैठे। सुग्रीव ने कहा—

"त्वं वयस्योऽसि हृद्योमे एकं दुःखं सुखं च नौ।

तुम मेरे मित्र हो, प्राणप्यारे हो, आज से तुम्हारे सुख में मेरा सुख और तुम्हारे दुःख में मेरा दुःख है।"

राम सुग्रीव की मित्रता देखकर हनुमान को अपार हर्ष हुआ। उन्होंने अपने को कृतकृत्य समझा। सुग्रीव ने भी राम को विश्वास दिलाया कि, "देवी सीता पृथ्वी के किसी भी भाग पर हों, मैं उनका पता अवश्य लगाऊँगा।" और राम ने भी प्रतिज्ञा की कि, "यदि ब्रह्मा विष्णु और महादेव भी बाली की सहायतार्थ आ जावें

तो वह जीवित नहीं रह सकेगा।" इसके बाद सुग्रीव ने सीता के वे वस्त्र और आभूषण दिखाये जो उन्होंने आकाश मार्ग में से रावण के चंगुल में फँसे हुए सुग्रीव हनुमान आदिको बैठे देखकर डाले थे। सीता के वस्त्र और आभूषण देखकर राम का जी भर आया, उनका दुःख दूना हो गया। तब हनूमान ने उन्हें समझा बुझाकर धीरज बँधाया और कहा—

"राघवेन्द्र! आप शोक को त्याग दें। सीता देवी अवश्य आप को प्राप्त होगी केवल विलाप करने से होता भी क्या है। हमारे महाराज सुग्रीव में वह बल है कि—

"रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम्।
तथास्मि कर्त्तानचिराद्यथा प्रीतो भविष्यसि॥"

श्रीसुग्रीवजी की भार्या भी इनके भाई द्वारा हरण की गई है किन्तु ये आपकी भाँति अधीर नहीं हैं।"

हनूमान के वचनों से राम को संतोष हुआ। फिर सुग्रीव ने रामजी के बल पुरुषार्थ की परीक्षा लेनी चाही। राम ने बालि द्वारा मारे गए दुंदुभि राक्षस के अस्थिपंजर को पैर की ठोकर से दस योजन फेंक दिया और ताल नामक सात वृक्षों को एक ही बाण से वेधकर अपने बल का परिचय दिया। कुछ दिन बाद राम के बलपर सुग्रीव ने बाली को युद्धार्थ ललकारा। दोनों में युद्ध हुआ। अन्त में बाली श्रीरामजी के निशित बाण की चोट खाकर धराशायी हुआ। राम ने सुग्रीव को बाली की जगह राज्यासन

पर बिठाने और अंगद को युवराज बनाने का हुक्म दिया। तब हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा—

"स्वामिन्! आप किष्किन्धा नगरी में चलकर अपने हाथों अपने प्राण प्यारे मित्र सुग्रीव को राज्य-मुकुट पहिनाइये। मैंने राज्याभिषेक की सब सामग्री एकत्र कर ली है।"

रामजी ने कहा—"हनुमान! मैं तुम्हारे इस स्नेह तथा आदर भरे वचनों से प्रसन्न हूँ। परंतु मुझे १४ वर्ष के लिए वनवास मिला है, अतएव किसी नगर में मैं जा नहीं सकता। इसलिए तुम्हीं विधिपूर्वक सुग्रीव को राजतिलक दे दो। परन्तु न्याय दृष्टि से अंगद ही राज्याधिकारी है। वह इस समय बालक है, उसे राज-काज चलाने का ज्ञान अभी अच्छी तरह नहीं है—इसलिए अंगद को युवराज का पद दे देना ठीक है।"

रामचन्द्रजी की आज्ञा पाकर महावीर हनुमान् ने सर्वौषधि से सुग्रीव और अंगद को स्नान कराया। तत्पश्चात् सुग्रीव को राज-सिंहासन पर और अंगद को युवराज के आसन पर बिठा उन्हें राजतिलक किया। अन्य मंत्रियों सहित हनुमान ने सुग्रीव को प्रणाम कर राजकीय आज्ञाओं तथा शासन विषयक सहायता देने की प्रतिज्ञाएँ कीं। इस प्रकार हनुमानजी की सहायता से सुग्रीव ने पुनः अपनी पत्नी और राज्यासन को प्राप्त किया। सुग्रीव ने हनुमान के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट कर उनकी प्रशंसा की।

सुग्रीव को राज्य करते कई महीने बीत गये। वह राज्यैश्वर्य्य के उपभोग में इतना लिप्त हो गया कि अपने मित्र श्रीरामचन्द्रजी

की भी उसे कुछ याद नहीं रही। यह देखकर नीतिज्ञ हनुमान ने सुग्रीव की सेवा में उपस्थित होकर कहा—

"राजन्! आपको राज्य मिला और यश भी मिला। कुल कीर्ति और लक्ष्मी भी आपने यथेष्ट प्राप्त कर ली। आपके शत्रु भी आपसे भयभीत रहते हैं। परन्तु अभी मित्र कार्य बाकी है अतएव उसे जल्दी करना चाहिये। क्योंकि जो समय पर मित्रों की प्रसन्नता प्राप्त करता है, उसका राज्य, कीर्ति, बल और लक्ष्मी दिन दूनी बढ़ती है। इसलिये आप सब कामों को छोड़कर पहिले अपने हितैषी श्रीरामजी का कार्य कीजिये। यह राज्य और कुल-प्रतिष्ठा सब उन्हीं की कृपा का फल है। आपको उचित है पहिले सीता देवी को ढूँढने का यत्न करें। वे आपके सच्चे मित्र हैं—उन्होंने इन्द्र समान बली बाली को मारकर आपके प्राण, धन, स्त्री, पुत्र की रक्षा ही नहीं की बल्कि आपको महाराज बना दिया है अब शीघ्र ही अपने वीर और सुचतुर योधाओं को भेजकर सीता की खोज कराना चाहिये।"

हनुमान की समयोचित और उचित सूचना को सुनकर सुग्रीव ने नील को बुलाकर कहा कि—"सीतादेवी की खोज में योग्य दूतों को चारों दिशाओं में भेजो और जहाँ तुम्हारे जाने की जरूरत हो वहाँ तुम जाओ।" सुग्रीव की आज्ञा पाकर नील ने अपने विश्वस्त पुरुषों को सीता को ढूँढने भेज दिया।

इधर वर्षा समाप्त होने पर श्रीरामजी को विचार हुआ कि सुग्रीव राज्य पाकर मेरे दुःखों को भूल गया है। इसलिये

उन्होंने लक्ष्मण को सुग्रीव के पास भेजा। लक्ष्मण के राजमहल में पहुँचते ही सुग्रीव घबरा उठा और उसने तत्काल ही हनुमान को बुलाकर एकान्त में उनसे कहा—

"मन्त्रिवर! मैं राम अथवा लक्ष्मण से नहीं डरता हूँ, बल्कि मैंने प्रतिज्ञा करके उसे पूर्ण नहीं की. इसका भय है। क्योंकि मेरी इस गलती से धर्मात्मा राम जैसे हितैषी मित्र मुझसे असंतुष्ट हो गए हैं। यह बिलकुल सत्य है कि—

"सर्वथा सुकरं मित्रं दुष्करं परिपालनम्॥"

मित्र बना लेना सहज है, परन्तु मित्रता निभाना कठिन है। परन्तु अब आप ही कहिये कि मैं इस पाप का क्या प्रायश्चित करूँ? इस समय मैं सिवाय आपके और किसी की भी सम्मति को ठीक नहीं समझता।"

सुग्रीव के ऐसे वचन सुन हनूमान ने कहा—"सूर्यनन्दन! राम का नाराज होना उचित है। लक्ष्मणजी को भेजकर उन्होंने अच्छा ही किया है। आप प्रमादवश अपने कर्त्तव्य-कर्मों को भुला बैठे हैं। देखो न, कब से आकाश निर्मल और रास्तों का कीचड़ सूख चुका है? वर्षा को बीते महीनों हो गये; क्या आपने सीता को ढूँढने का कोई उपाय किया है? मैंने तो पहिले ही एक दिन आपकी सेवा में यही बात निवेदन की थी परन्तु आपने फिर भी कुछ दिलचस्पी नहीं ली। यदि आप मेरे कहने पर ही कुछ प्रबन्ध करते तो आज लक्ष्मण को यहाँ इस तरह क्रुद्ध होकर आने का मौका ही नहीं आता। इस समय तो केवल यही उपाय है

कि आप लक्ष्मण से अपने अपराधों के लिये हाथ जोड़कर क्षमा माँगें। मुझे इस तरह स्पष्ट परामर्श के लिये क्षमा करना। क्योंकि—

"नियुक्तैर्मन्त्रिभिर्वाच्यो ह्यवश्यं पार्थिवोहितम्।
इतएव भयं त्यक्त्वा ब्रवीम्यवधृतं वच॥"

शास्त्रों में लिखा है कि मंत्री पदपर नियुक्त मंत्रियों को राजा के हितकर वाक्य स्पष्ट कह देने चाहिए इसीलिये मैंने आपसे इस प्रकार बोलने की धृष्टता की है।"

हनुमान की सम्मति लेकर अपने अपराधों के लिये सुग्रीव ने लक्ष्मण से क्षमा याचना की और बालि की पत्नी तारा की सम्मति ले सुग्रीव, हनूमान, अंगद, मयन्द, नील, नल, कुमुद, सुखेण, जाम्बवान, दधिमुख, आदि मंत्रियों को साथ लिये श्रीराम जी की सेवा में पहुँचे। थोड़ी देर बाद सुग्रीव की सेना भी वहाँ पहुँच गई। सेना के वीरों को देखकर श्रीरामचन्द्रजी को आशा हुई।

सुग्रीव ने अपनी सेना को चार भागों में बाँटा, और उन्हें समझा-बुझाकर चारों दिशाओं में सीताजी की खोज के लिए उसी वक्त रवाना कर दिया। हनुमान को अंगद आदि वीरों के साथ पूर्व दिशा में भेजा। श्रीरामजी ने हनुमान को ढूँढ़ने के लिए जाते देख अपने पास बुलाया और कहा—

"वीरबाहो! मैं तुम्हें यह अँगूठी देता हूँ, इसके देखने से सीताजी को तुम पर विश्वास होगा और वे तुम्हें हमारा दूत मान-कर अपनी बातें तुमसे कहेंगी।"

श्रीहनुमान ने सिर झुकाकर अंगूठी ले ली और सीता की

खोज के लिए रवाना हुए। जहाँ रास्ते में कोई राक्षस मिलता वे उसे वहीं मार डालते। इस प्रकार ढूँढ़ते ढूँढ़ते हनुमान आदि सभी वीर एक अत्यन्त घने, भयावह जंगल में पहुँचे। यह जंगल बड़े बड़े वृक्षों से समाकीर्ण, लता गुल्म आदि से पूर्ण था। बड़े-बड़े पहाड़ हृदय को भय उत्पन्न करते थे। साँप, बिच्छू, भेड़िये, रीछ, व्याघ्र आदि हिंस्र जंतु इतस्तः निर्भयतापूर्वक विचरण कर रहे थे। इतना होने पर भी इस जंगल में पानी की एक बूद नहीं दिखाई पड़ी। वृक्षों में फल फूलों का कहीं पता न था। यद्यपि वर्षा ऋतु का अन्त ही हुआ था तथापि जल और फलफूल इस वन में थे ही नहीं। हनुमान, अंगद, जाम्बुवान आदि सभी योद्धा भूख-प्यास से व्याकुल हो घबड़ा उठे। अपने प्राणों पर बीती देख हनुमान एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़े और पानी के लिए निगाह दौड़ाई। कुछ दूरी पर उन्हें एक कन्दरा सो दीख पड़ी जिसके पास जलचर प्राणी उड़ते हुए दिखाई पड़े। ये सब योद्धा उसी कन्दरा की ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचकर उन्हें एक आश्रम मिला जहाँ एक तेजपुंज तपस्विनी कृष्ण मृगचर्म धारण किये फिर रही थी। उसके पास पहुँचकर हनुमान ने कहा—"देवि! आप कौन हैं? क्या आप हमें अपने कुल गोत्र बतलाने की कृपा करेंगी?"

उस तपस्विनी ने कहा—"हनुमान! यह मयदानव का बनाया हुआ आश्रम है। समय के फेर से यह मेरी सखी हेमा को प्राप्त हुआ। हेमा गीत-नृत्य आदि संगीत कला में परम प्रवीण है। मैं उसी की आज्ञा से इस आश्रम की रक्षा करती हूँ। मुझे स्वयं-

प्रभा कहते हैं ? आप लोग यहाँ आनन्दपूर्वक बैठिये और मेरा आतिथ्य स्वीकार कीजिये ।"

ऐसा कहकर स्वयंप्रभा वन में गई और विविध भाँति के स्वादिष्ट कन्द, मूल, फल ले आई । हनूमान आदि वीरों ने फल मूल जल आदि खा-पीकर अपनी क्षुधा-तृषा शांत की । फलाहार से निवृत्त हो हनूमान ने स्वयंप्रभा से कहा—

"माता ! हम भूख-प्यास से मरने ही वाले थे । आज आपने हमें जीवन दान दिया है । अब आप आज्ञा दें, हम आपके इस उपकार के बदले आपकी क्या सेवा करें ?"

स्वयंप्रभा बोली—"वीरो ! मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है । मैं तुम्हें अपने आश्रम में देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूँ । हाँ, आप और कुछ आज्ञा दीजिये, मैं सेवा के लिये तय्यार हूँ ।"

हनुमान कहने लगे—"धर्मधारिणी ! हम सब आपकी शरण आये हैं । हमें सीता को ढूँढने के लिये, सुग्रीव महाराज ने भेजा है । परन्तु दिन बहुत बीत गये और हमें अभी समुद्र तट और समुद्र की बस्तियाँ ढूँढना है । मार्ग बड़ा ही कठिन है—यदि आप हमें समुद्र तक शीघ्र पहुँचा सको तो बड़ी कृपा हो ।"

स्वयंप्रभा ने एक शीघ्रगामी यान मँगाया, उस पर सबों को चढ़ाकर स्वयं उनके साथ गई और थोड़ी ही देर में सब को समुद्र के किनारे जा उतारा । इन लोगों ने बड़ा ही आश्चर्य किया समुद्र तट पर इन्हें छोड़, देवी स्वयंप्रभा ने कहा—

"यह समुद्र है और यह प्रस्रवण पर्वत है । अब मैं जाती हूँ ।

ईश्वर आप को सफलता दे—आप का कल्याण हो।"

हनूमान आदि वीरों ने स्वयंप्रभा का उपकार माना और उन्हें धन्यवाद दिया। स्वयंप्रभा लौट गई और ये सब यहाँ बैठकर आपस में विचार करने लगे।

लङ्का-प्रवेश

समुद्र किनारे पहुँचकर भी जब हनुमान आदि वीरों को सीताजी का कुछ भी पता नहीं लगा तो वे बड़े चिन्तातुर हुए। और जब उन्हें सुग्रीव महाराज की कड़ी आज्ञा का स्मरण हुआ तो अंगद आदि वीरों ने वहाँ ही शरीर त्याग देने का पक्का इरादा कर लिया। परन्तु हनुमान ने अंगद को रोककर कहा—

"राजकुमार! विपत्ति के समय धीरज रखना चाहिये। इस तरह घबरा जाने से काम नहीं चलेगा। हमारा कर्त्तव्य है कि हम प्रयत्नशील होकर कार्य की सफलता के उद्योग करते रहें। आप हिम्मत न हारिये। जनकनन्दिनी सीता को तुम अवश्य प्राप्त कर सकोगे।"

अंगद ने कहा—"आंजनेय! हमें सबसे अधिक इस बात का दुःख है कि हम राम का कार्य नहीं कर सके। हमसे तो अच्छा वह धर्मज्ञ जटायु ही था जिसने श्रीराम को सीताहरण का सम्वाद सुनाया। उससे आगे हम अभी तक कुछ भी नहीं कर सके। जटायु ने राम के लिये अपने प्राण त्याग दिये,वह धन्य था।"

हनुमान अंगद की इस बातचीत को सम्पाति कहीं सुन रहा

था। वह शीघ्र ही इन लोगों के पास आकर बोला—"क्या जटायु की मृत्यु हो गई। वह मेरा छोटा भाई था? उसने राम का कौनसा प्रिय कार्य किया?"

हनुमान ने कहा—"जटायु ने राम की भार्या सीता देवी को रावण के पञ्जे से छुड़ाने के लिये उससे युद्ध किया। अंत में वह घायल होकर वहीं गिर पड़ा और रावण सीता को ले गया। अपना कर्त्तव्य पालन करते हुए जटायु ने शरीर त्याग दिया।"

सपाति ने आँखों में आँसू भरकर कहा—"अपने भाई की मृत्यु का बदला चुकाने की शक्ति अब मुझमें नहीं रही है। हाँ, वाणी से ही मैं श्रीराम की अच्छी सहायता करूँगा। मैंने एक सुन्दरी को रावण के चंगुल में फँसी देखा था। वह "राम राम और लक्ष्मण" पुकारकर विलाप करती थी। मेरे विचार से वह सीता ही होगी। यहाँ से सौ योजन की दूरी पर समुद्र के बीच में लंकापुरी बसी हुई है। उसके चारों ओर सुदृढ़ नगर-प्राचीर है। उसी लंका में सीता को उसने रखा है, उसके चारों ओर राक्षसियों का पहरा लगाया है। उस पापी ने यह बहुत ही बुरा किया है, उसे अवश्य दण्ड मिलेगा। मुझे सुपर्ण विद्या द्वारा निर्मित चक्षुबल प्राप्त है। मुझे सीता देवी लंका में दिखाई पड़ रही हैं? उठो, आप लोग बिना देर लगाये अपना कार्य आरंभ करो।"

सम्पाति की बात सुनकर सब वीर समुद्र के किनारे पहुँचे और समुद्र पार करने के विषय में विचार करने लगे। अंगद ने सब से कहा—"कौन वीर है जो समुद्र को पार करेगा? कौन है

जो सुग्रीव की प्रतिज्ञा को सत्य प्रमाणित करेगा ? वह कौन वीर है जो सहस्रों नरनारियों को चिंता से छुटकारा दिलावेगा ?"

युवराज अंगद के इस वचन को सुनकर गज ने १० गवाक्षने २० शरभ ने ३० ऋषभ ने ४० गन्धमादन ने ५० मयन्द ने ६० द्विविध ने ७० सुषेण ने ८० और वृद्ध जाम्बवान ने ८० योजन तैरने की अपनी शक्ति बताई। तब अंगद ने कहा "मैं जा सकता हूँ परन्तु फिर वापस नहीं आ सकूँगा।" अंगद की यह बात सुन जाम्बवन्त ने कहा "हम आपको नहीं जाने देंगे। क्योंकि आप तो हमारे स्वामी हैं।"

अंगद ने कहा—"आप भी नहीं जाते और मुझे भी नहीं जाने देते फिर हम सबको यहीं प्राण त्याग देना ठीक है।"

जाम्बवान ने कहा—"राजन्! घबराइये नहीं मैं अभी उस वीर से प्रार्थना करता हूँ जो इस काम को अच्छी तरह पूरा कर सकेगा।" ऐसा कह उन्होंने हनुमान से कहा—"हे वानरश्रेष्ठ! तुमने चुप्पी क्यों साध रखी है ? आप पवन के पुत्र और उन्हीं के समान पराक्रमी हो। आपका जन्म ही रामजी के लिये हुआ है—अतएव आप अपनी शक्ति दिखा दें। आपने तो बचपन ही में सूर्य को पकड़ लेने का प्रयत्न किया था। उस वक्त आप सहज ही में ५ सौ योजन उड़ गये थे। यदि इन्द्र ने बीच में न रोका होता तो न जाने आप और कितने ऊँचे पहुँचते ! मेरी शक्ति अब बुढ़ापे के कारण कम हो गई है, वर्ना मैं आपसे इस तरह कदापि नहीं कहता और स्वयं समुद्र तैरकर लंका में पहुँचता। इस समय हम आपकी शक्ति देखने के लिये उत्सुक हैं। उठो, इस समुद्र को पार करो।"

जाम्बवान की ऐसी उत्साहवर्द्धक तथा स्फूर्त्तिदायक बातें सुनकर हनुमान ने कहा—"मैं अपने बाहुबल से इस समुद्र को तैर सकता हूँ। मेरी जंघाओं के वेग से उठा हुआ समुद्र का जल आकाश में चढ़ता हुआ दीख पड़ेगा। मैं बिना आराम किये समुद्र में आ-जा सकता हूँ। मित्रो! विश्वास रखो मैं जनकनन्दिनी की खबर अवश्य लाऊँगा।

हनुमान के इन वचनों को सुनकर, समस्त वानर प्रसन्न होकर उछलने लगे। वे मरे जी उठे। और कहने लगे—"आंजनेय! ईश्वर आपका भला करे, तुम्हीं इस समय हमारे आश्रय हो। दुःख-सागर में डूबते हुए अपने जाति बांधवों को आपने किनारे लगाया है। हम आपकी कार्य-सिद्धि के लिये, स्वस्तिवाचन और शांतिपाठ के मंत्रों द्वारा मंगल कामना करेंगे। आप ऋषियों, गुरुजनों, और जाति के वृद्ध पुरुषों की कृपा से इस शतयोजन समुद्र को आनन्दपूर्वक पारकर फिर वापस लौटें—यही हम सब लोगों की हार्दिक इच्छा है।"

इतना सुनते ही हनुमान ने समुद्र तैरने के लिए अपना उत्साह प्रदर्शनार्थ सिंह गर्जना की। जिसे सुनकर समस्त प्राणियों का कलेजा दहल गया और कानों में भन्नाहट होने लगी। हनुमान समुद्र में कूदने के लिए एक पर्वत-शिखर पर जा चढ़े। उस समय ऐसा मालूम होता था मानों उदयाचल पर बाल-सूर्य उदय हुआ हो। हनुमान रूपी सूर्य को उदय होता देख उनके साथियों के हृदय-कमल खल उठे। सभी हर्ष-ध्वनि से दशों दिशाओं को निनादित

करने लगे। हनुमान के वेग से उस समय ऐसा मालूम पड़ता था मानो पर्वत काँप रहा है—

"सवेगवान्वेग समाहितात्मा हरिप्रवीरः परवीरहन्ता।
मनः समाधाय महानुभावो जगाम लंका मनसा मनस्वी॥

कूदने के लिये तय्यार होकर हनुमान ने सब वानरों को सम्बोधन करते हुए कहा—"मित्रो! जैसे रामजी के हाथ से छूटा हुआ बाण वायु-वेग से गमन करता हुआ, अपना कार्य सिद्ध करता है उसी तरह मैं रावणपालित लंका में जाऊँगा। यदि मुझे लंका में सीता न मिलीं तो जहाँ भी उनका पता लगेगा वहाँ ही पहुँचकर उनकी खबर लाऊँगा। नहीं तो—

"बद्ध राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्।
सर्वथा कृतकार्योऽहमेष्यामि सहसीतया॥"

उस राक्षसराज रावण को पकड़कर यहाँ लाऊँगा और सीता देवी के साथ कृतकार्य होकर यहाँ लौटूंगा।"

इतना कह हनुमान समुद्र में कूद पड़े। उनके कूदने का ऐसा शब्द हुआ जैसा मेघ-गर्जन से होता है। हनुमान खारे पानी को अपनी भुजाओं के बल से चीरता हुआ पवन की भाँति आगे बढ़ने लगा। सागर ने हनुमान को सीता की खोज में जाते देखकर इन्हें सहायता देना अपना परम कर्त्तव्य समझा। उसने हनुमान से विश्राम करने के लिए कहा। सागर के कथनानुसार उन्होंने मैनाक नामक पर्वत पर थोड़ी देर विश्राम किया, और क्षुधातृषा शान्तकर वहाँ से आगे बढ़े।

देवताओं ने हनुमान के बुद्धि बल की परीक्षा के लिए सर्पकुल की माता सुरसा को भेजा। वह सुरसा मुँह बाये हनुमान को खाने के लिए दौड़ी। तब हनुमान ने उससे विनीत भाव से कहा—"माता! तू मुझे जाने दे, मैं अपने स्वामी का कार्य पूर्ण कर लूँ और सीता देवी की खबर श्रीरामजी को सुना दूँ, फिर तू मुझे खा लेना।"

सुरसा ने हनुमान की बात नहीं मानी और उन्हें हड़प जाने के लिये मुँह फैलाया। यह देखकर हनुमान ने अपना शरीर योगबल से बढ़ाया। सुरसा ने भी उससे द्विगुण शरीर कर लिया। यह देखकर हनुमान ने अपना शरीर और बढ़ाया। इस प्रकार—

"जस जस सुरसा बदन बढावा, तासु द्विगुन कपि रूप दिखावा।"

जब सुरसा ने अत्यधिक मुँह फैलाया, तब हनुमान ने अत्यंत छोटा रूप बनाया और—

"बदन पैठि पुनि बाहिर आवा, माँगी बिदा ताहि सिर नावा।"

मुँह में घुसकर झटपट बाहर आ गये। हनुमान की यह होशियारी देखकर, सुरसा ने आशार्वाद दिया और कहा—

"गच्छ साधय रामस्य कार्यं बुद्धिमतां वरः।"

(अध्यात्म रामायणे)

जाओ श्रीरामजी का कार्य सिद्ध करो। मुझे देवताओं ने तुम्हारी परीक्षा के लिये भेजा था। जाओ, रामकाज सम्पादन करो।

सुरसा से निपटकर हनुमान आगे बढ़े ही थे कि एक सिंहिका नामक राक्षसी से भेंट हो गई। इस राक्षसी में छायाग्राही शक्ति

थी। अर्थात् दूर ही से वह प्राणी को अपनी ओर खींच लेती थी। हनुमान भी इसके चक्कर में पड़ गये, परंतु पास पहुँचते ही उसको एक इतनी जोर की लात जमाई कि वह वहीं ठंडी होगई। इसे मारकर हनुमान ने फिर दक्षिण दिशा की ओर तैरना आरंभ किया और शीघ्र ही समुद्र के किनारे जा पहुँचे। समुद्र तट पर पहुँचते ही वहाँ के वृक्ष, लता, गुल्म आदि को पुष्पित एवम् फलों से लदे हुए देखकर हनुमान को बहुत ही आनन्द हुआ। त्रिकूट पर्वत के शिखर पर हनुमान ने एक नगर देखा—यही लंकापुरी थी। इस पुरी के चारों ओर अत्यंत गहरी खाइयाँ और एक से ऊँचे कई कोट थे। कोटों के उस तरफ फिर एक गहिरी खाई थी। उस पुरी की रक्षा के लिये सैकड़ों निशाचर अस्त्र-शस्त्र धारण किए इधर से उधर घूम रहे थे। कोट की बुर्जों पर तोपें उनके मुकुट की भाँति शोभा दे रही थीं।

ऐसी लंका को देखकर हनुमान विचार करने लगे कि इसमें किस प्रकार प्रवेश किया जाय। हनुमान लंका के उत्तर द्वार पर पहुँचकर मन ही मन सोचने लगे—

"यहाँ हम लोगों को आकर सफलता मिलना कठिन है; क्योंकि यह पुरी इतनी तीव्र बुद्धि से रक्षित है कि युद्ध द्वारा इसे जीतना असंभव है। यहाँ श्रीरामजी आकर करेंगे भी क्या? यहाँ साम, दाम, दण्ड और भेद किसी भी नीति का अवलंबन नहीं किया जा सकता। प्रथम तो सेनासहित यहाँ पहुँचना ही दुस्तर है क्योंकि मैं, अंगद, नील, और सुग्रीव चार ही व्यक्ति समुद्र

पार कर सकते हैं। अस्तु, अब मुझे सीता का पता लगाना चाहिये परन्तु मैं इस नगरी में प्रवेश कैसे कर सकूँगा। बिना अन्दर गये कुछ पता भी नहीं लग सकता। मुझे यह काम इस तरह से करना चाहिये कि रावण को कुछ भी पता न लग सके। यदि उसे पता लग गया तो सब बना बनाया काम बिगड़ जावेगा।"

इस प्रकार विचार-सागर में निमग्न हनुमान थोड़ी देर के लिये चित्रवत् बैठे विचार करते रहे। कुछ देर बाद उन्होंने निश्चय किया कि "रात के वक्त गुप्त रीति से लंका में प्रवेश करना ठीक है।"

सूर्यास्त होने पर हनुमान ने लंकापुरी में प्रवेश किया। किन्तु ज्योंही ये आगे बढ़े त्योंही किसी ने सामने से उपटकर कहा—"आनेवाले सावधान! ठहर, खबरदार आगे एक कदम न रखना।" हनुमान ठिठक गये परन्तु रुके नहीं आगे की ओर बढ़ते ही गये। तब अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित एक राक्षसी ने आकर कहा—"चोर की तरह रात को लंकापुरी में प्रवेश करनेवाला तू कौन है? दुष्ट! क्या तू नहीं जानता कि जब तक लंकिनी इस पुरी की रक्षा करती है तब तक तुझ जैसे चालाकों की दाल नहीं गल सकती।" ऐसा कहती हुई वह महावीर की ओर दौड़ी परन्तु हनुमान ने शीघ्रता-पूर्वक उसको एक ऐसा घूँसा मारा कि वह बेहोश होकर गिर पड़ी और रोने लगी। उसे गिरी देखकर हनुमान के मन में दया आई, और स्त्री समझ कर उसपर आगे प्रहार नहीं किया। तब लंकिनी ने कहा—"वीर! आपकी मनोकामना पूर्ण होगी।

आपने मुझे नहीं जीता बल्कि सारी लंकापुरी पर विजय पाई है । ब्रह्माजी ने मुझसे ये सब बातें पहिले ही कह दी थीं कि रामदूत के द्वारा तुझे मूर्च्छा होगी । इसलिये हे महाबाहो ! जाओ, राम का काम आनन्दपूर्वक करो । सीतादेवी के दर्शन करो,वह अशोक-वाटिका में है । अब रावण का अन्त आ गया, यह मुझे निश्चय हो गया है ।" लंकिनी से पता पाकर हनुमान ने हर्षपूर्वक लंका में प्रवेश किया ।

सीता से बातचीत

लंकिनी को मारकर हनुमान निर्भयतापूर्वक वहाँ पहुँचे जहाँ राजा तथा राज-कर्मचारियों के महल थे। उन्होंने राक्षसों को स्वाध्याय, जप, हवन और मन्त्रोच्चारण करते देखा । उसी समय उन्होंने आगे बढ़कर विद्युन्माली, जम्बुमाली द्रंष्ट्र, बहु दंष्ट्र, द्विजिह्व, विद्युज्जिह्व, इन्द्रजित्, विरूपाक्ष, धूम्राक्ष आदि सभी वीरों के मकानों को देखा । इस प्रकार देखते-भालते महावीर रावण के महलों के पास पहुँचा । वहाँ अस्त्र-शस्त्र धारण किये अनेक योद्धा खड़े हुए थे । आँखें बचाकर हनुमान शत्रु के महलों में निर्भयतापूर्वक घुस गये । वहाँ उन्होंने रावण की चित्रशाला, लतागृह, काम-गृह, क्रीड़ा-भवन, दिवागृह, और नृत्य-शाला आदि देखकर लंका के वैज्ञानिक और शिल्पियों की बुद्धि का पता लगाया । रावण की रीति नीति का पता लगाकर, हनुमान को

परमानन्द प्राप्त हुआ। उन्होंने पुष्पक विमान देखकर उसमें प्रवेश किया और यहाँ से निकलकर, रावण के उस शयनागार में पहुँचे जहाँ वह शराब पीकर बेसुध सो रहा था। फिर यहाँ से चलकर रनिवास में गये। वहाँ वस्त्राभूषणों से सुसज्जित अनेक सुन्दरियों को अचेत पड़े देखा। मन्दोदरी के रूप-सौन्दर्य को देखकर हनुमान को सीता का सन्देह हुआ। परन्तु अन्त में उन्होंने सोचा कि "सती-शिरोमणि सीताजी राम से वियुक्त होकर इस प्रकार नहीं रह सकतीं।

"न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हं भामिनी।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्त्तुं ना पानमुपसेवितुम्।" (वा० रामा०)

सीता देवी पति से अलग होकर इस प्रकार न तो सो ही सकती हैं, न वस्त्राभूषण धारण कर सकती हैं और न पान ही चबा सकती हैं।" इस प्रकार सोचकर हनुमान ने अपने चित्त को तसल्ली दी। परन्तु दूसरे ही क्षण एक विचार उनके मन में उठा। जिससे वे बड़े असमंजस में पड़ गये। उन स्त्रियों को देखकर हनुमान धर्म भय से भयभीत हो शंका करने लगे। वे मन ही मन सोचने लगे—

"मैंने आज सोई हुई कुलीन स्त्रियों को एकान्त में देखा है। इस कार्य से मेरा धर्म लोप होगा। मैंने आज तक पहिले कभी इस तरह स्त्रियों को नहीं देखा था। मैं ब्रह्मचारी हूँ—मैंने आज यह महान् अधर्म किया है।" इस तरह सोचते हुए हनुमान चिंतार्णव में डूब गये। परन्तु फिर उन्होंने सोचा—"मैंने रावण की स्त्रियों

को इस दशा में देखा तो है परन्तु मेरे मन में कोई विकार तो उत्पन्न हुआ ही नहीं, फिर इस तरह घबराने की जरूरत भी क्या है। क्योंकि—

"मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्त्तते।
शुभाशुभास्ववस्थेसु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥"

शुभ और अशुभ अवस्थाओं में मन ही सब इन्द्रियों की प्रवृत्ति का कारण है और मेरा मन अटल है। सीता और कहीं ढूंढ़ी नहीं जा सकतीं—स्त्रियों को स्त्रियों में ही ढूंढना चाहिये। इसलिये मैंने पवित्र मन से रावण का सारा अन्तःपुर ढूंढ लिया किन्तु वैदेही का कहीं भी पता नहीं।"

रावण का अन्तःपुर देखने के बाद हनुमानजी को आशा, निराशा हो गई। उन्होंने किष्किन्धा वापस लौटने का इरादा किया। परन्तु वे सोचने लगे कि "जाम्बवान वगैरः मुझे क्या कहेंगे ? मैं सुग्रीव और अंगद को क्या मुहँ दिखाऊँगा ?" इस प्रकार सोचकर हनुमान थोड़ी देर के लिये "किंकर्त्तव्य विमूढ़" हो गये। अन्त में हनुमान ने निश्चय किया—

"अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परंसुखम्।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः ॥
निर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्त्तकः।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्चकरोति सः ॥"

"उत्साह न त्यागनाही श्री का मूल है। उत्साह हारना ही परम सुख है, अतएव मैं अब सीताजी को वहाँ ढूढूंगा

जहाँ अभी तक नहीं ढूढा है। उत्साह न हारने ही से सब कार्य पूर्ण होते हैं।"

ऐसा विचारकर हनुमान ने फिर राज-प्रासादों को ढूँढा। रावण के द्वारा हरण की गई विद्याधरों की स्त्रियाँ तथा नाग-कन्याएँ हनुमान ने देखीं, परन्तु उन्हें सीता कहीं भी नहीं दीख पड़ी। अब तो उनकी निराशा और बढ़ी, वे मन ही मन कहने लगे—"हमारा प्रयत्न, समुद्र तैरने का परिश्रम सब व्यर्थ गया। क्या देवी सीता रावण के पंजे में आकर उसकी बातें मान सकती हैं ? नहीं कदापि नहीं ? मेरे विचार से तो ऐसा मालूम होता है कि जानकी ने अपना शरीर नष्ट कर दिया है। अथवा रावण ने कहीं ऐसी जगह छिपाकर रखी होगी, जहाँ कोई देख न सकता हो। वह पंजर बद्ध मैना की तरह न जाने कहाँ विलाप करती होंगी। यदि रामजी से यह कह दिया जाय कि सीता नही मिलीं, नष्ट हो गईं—मर गईं तो यह भी ठीक नहीं। क्योंकि ऐसा सुनकर वे प्राण न त्याग दें यह संशय है। और कुछ भी न कहना अपने स्वामी को एक प्रकार से धोखा देना है। यदि मैं बिना पता लगाये लौटूँगा तो लोग मेरे पुरुषार्थ को धिक्कारेंगे। राम का कार्य सिद्ध न होने पर सुग्रीव भी शायद ही अपने जीवन को रखे। इसलिये सबसे अच्छा उपाय तो इस समय यही है कि मैं यहीं पर रहूं और वापस लौटूँ ही नहीं। मेरे आने की आशा पर रामचन्द्रजी सुग्रीवजी जीते तो रहेंगे ! परन्तु अभी मैंने अशोक बाटिका नहीं खोजी है अतएव पहिले इसे ढूंढ़ लूँ। इतने पर भी सीता नहीं मिलीं तो मैं

समुद्र के किनारे चिता बनाकर अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा। समुद्र में डूब मरूँगा। तप द्वारा शरीर को सुखाकर नष्ट कर दूँगा किंतु सीता देवी को बिना देखे कदापि नहीं लौटूँगा। नहीं तो जिस रावण पर सीता-हरण का दोष लगा है उसे ही उठाकर श्रीरामजी की सेवा में ले जा रखूँगा। बिना पता लगाये लौटने से महान् अनर्थ हो जाने की संभावना है। क्योंकि रामजी के प्राण त्यागते ही लक्ष्मण नहीं रहेंगे। लक्ष्मण की मृत्यु सुनकर भरत और भरत के मरने पर शत्रुघ्न प्राण त्याग देंगे। सब पुत्रों के मरने पर उनकी माताएँ कैसे जीवन धारण करेंगी। राम की इस दशा को देखकर सुग्रीव प्राण त्याग देंगे। सुग्रीव की मृत्यु पर रोमा अंगद और माता तारा भी प्राण त्याग देंगी। यह देखकर हजारों मेरे जाति-बान्धव समुद्र में डूबकर या जहर खा खाकर मर जावेंगे इसलिये मैं किष्किन्धा में जाकर इतने रोदन का कारण कदापि नहीं बनूँगा। अतएव मुझे अब अशोक बाटिका देखकर फिर कुछ आगे सोचना चाहिये।

ऐसा विचारकर हनुमान ने दीवार फाँदकर अशोक वन में प्रवेश किया। अशोक वाटिका देखकर उन्हें बड़ा ही आनन्द हुआ अनेक प्रकार के वृक्षलता, सरोवर, नदी, झरने, नहरें और पहाड़ियाँ देखीं। स्वर्ण, चाँदी, मोती, मणि, मूँगा आदि से सुसज्जित भूमि देखी। और अनेक भाँति के पुष्प देखे जिनकी गन्ध दूर दूर तक फैलकर मन को आनन्द पहुँचा रही थी। उन्होंने एक बड़ा ऊँचा शीशम का वृक्ष देखा जिसके चारों ओर स्वर्ण-वेदियाँ बनी

हुई थी। हनुमान इसी वृक्ष पर चढ़ गये और सीताजी को देखने की इच्छा से इधर-उधर दृष्टि फैलाकर देखने लगे। पास ही में हनुमान ने देखा कि एक रम्य स्थान में, मलिन वस्त्रों से ढकी हुई, राक्षसियों से घिरी हुई, दुर्बल गात, लक्ष्मी के सौन्दर्य को भी नीचा दिखानेवाली एक स्त्री भूमि पर लेटी हुई है। उसे देखते ही महावीर ने निश्चय किया कि, "वह यह है जिसके लिए रामचन्द्रजी करुणा, दया, शोक और काम की अग्नि में निरन्तर तप रहे हैं। इसी के लिए राम लक्ष्मण ने अनेक राक्षसों का वध किया है। मैंने भी इसी के लिये समुद्र तैरा है। इसी के लिए श्रीराम युद्धार्थ उद्यत हुए हैं। वास्तव में यदि जगत् भरके रत्न इसकी उपमा के लिए एकत्र किये जायँ तो वे इसके आगे तुच्छ ही ठहरेंगे। इसके मुख-मण्डल पर सूर्य विनिन्दित पातिव्रत तेज चमक रहा है। धन्य है इसका पतिप्रेम। जिस प्रकार मृगी शिकारी कुतियों से घिरी हुई हो, उसी तरह यह देवी इन निशाचरियों से घिरी हुई रहकर भी अपने पति-दर्शन की लालसा से जीवित है। इसे केवल अपने पतिदेव ही का ध्यान है—यह इधर उधर वृक्ष, पुष्प, पत्र, पहाड़, नदी, राक्षसी आदि किसी की ओर भी नहीं देखती हैं। यह भली भाँति जानती हैं कि—

"भर्तानामपरं भार्याः शोभनं भूषणादपि।
एषाहि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते।" (वा०रा०)

भर्त्ता ही स्त्रियों का परम भूषण है। उस भर्ता से अलग होने पर यह शोभा योग्य शोभाहीन हो रही है। सीता को इस दीन

हीन दशा में देखकर हनुमान का धीर चित्त भी अधीर हो उठा। उनके नेत्रों से आँसुओं की वर्षा होने लगी। इस प्रकार सोच विचार करते हनुमानजी को उसी वृक्ष में बैठे बैठे रात बीत गई। ब्राह्ममुहूर्त होने पर हनुमान ने अपना नित्य कर्म स्नान संध्योपासन आदि किया। और फिर एक अशोक वृक्ष पर चढ़ पत्तों में छिप रहे।

इसी बीच में रावण वहाँ आ पहुँचा और देवी सीता को अपनी स्त्री बनाने के लिये अनेक प्रकार के भय और लोभ दिखाने लगा। सीता ने उस ओर देखा तक भी नहीं और झिड़क कर कहा—

न हि गन्धमुपाघ्राय राम लक्ष्मणयोस्त्वया।
शक्यं संदर्शनेस्थातुं शुना शार्दूलयोरिवः।" (वा० रा०)

नीच रावण! राम लक्ष्मण का गन्ध आने पर तू उसी प्रकार नहीं ठहरेगा, जिस प्रकार सिंह की गंध पाकर एक कुत्ता। रावण ने कहा—"सीते! मेरी दी हुई अवधि के अब दो महीने ही शेष हैं यदि तूने दो महीने में मुझे स्वीकार नहीं किया तो राक्षस लोग तेरे मांस का कलेवा करेंगे।" इस प्रकार घण्टों माथा-पच्ची करके रावण चला गया। इसके बाद राक्षसियाँ रावण के आज्ञानुसार सीता को त्रास पहुँचाने लगीं। यह सब दृश्य हनुमान छिपे हुए देख रहे थे। वे सोच रहे थे कि "चाहूँ तो इसी क्षण इन सबको मार, सीता का कष्ट निवारण करूँ; परन्तु श्रीरामजी की आज्ञा नहीं है। और ऐसा करने में शायद बना

बनाया काम ही बिगड़ जाय ! इसलिये प्रकट होना ठीक नहीं। परन्तु मैं सीता को यदि बिना आश्वासन दिये यों ही कलपती विलपती छोड़ जाऊँगा तो मुझे बहुत बड़ा पाप होगा। संभवतः निरास होकर, और अपना कोई भी सहायक न पाकर ये अपना शरीर त्याग दें। किंतु इन राक्षसियों के सामने कैसे आश्वासन बँधाऊँ। यदि मैं सीता का पूरा हाल जाने बिना लौट चलूँगा तो रामजी मुझ पर क्रुद्ध होंगे तथा सुग्रीव का सब प्रयत्न निष्फल हो जावेगा।"

एसा सोचकर महावीर ने वृक्षपर ही बैठे-बैठे महाराजा श्रीरामचन्द्रजी का गुणगान आरंभ कर दिया। राम जन्म, धनुर्भंग, वनवास, सीताहरण, सुग्रीव-मिलन, हनुमान द्वारा समुद्र लंघन और अशोक वाटिका प्रवेश तक सब वृत्तान्त श्रीहनुमानजी ने संक्षेप में कहा। शिंशप वृक्ष पर बैठे महावीर को देखकर सीता आश्चर्य चकित हुईं और राम लक्ष्मण का नाम ले लेकर विलाप करने लगीं। अधीर होकर सीता देवी को रुदन करते देख हनुमान वृक्ष से नीचे उतरे और हाथ जोड़े सीता के सामने आ खड़े हुए। हनुमान ने अत्यन्त विनीत भाव से कहा—

"माता ! कृपा करके मुझे अपना कुल गोत्रादि और अपने दुःख का कारण बतलाओ।"

सीता ने अपने कुल एवम् गोत्र का वर्णन करते हुए, बनवास का जिक्र किया और रावणद्वारा लंका में पहुँचने का सारा वृत्तान्त कहा और कहा कि "रावण ने मुझे एक वर्ष में भार्या

बन जाने के लिये कहा है, जिसमें अब दो महीने बाकी हैं। तदुपरान्त, यदि श्रीरामजी ने मेरी सुध नहीं ली तो मैं अपना शरीर त्याग दूँगी।"

हनुमान ने विश्वास दिलाते हुए—"देवि मैं रामजी का दूत हूँ—उन्हीं की आज्ञा पाकर यहाँ आया हूँ। रामजी ने तुम्हें कुशल वृत्त कहा है तथा लक्ष्मण ने सिर झुकाकर प्रणाम कहा है।"

हनुमान की बातों से सीता को जो आनन्द हुआ, उसे लिखने को यह लौह लेखनी नितान्त असमर्थ है। सीता ने रामजी के हाल चाल फिर कह सुनाने के लिये हनुमान से आग्रह किया। सीता की आज्ञा पा महावीर कुछ आगे बढ़कर बातचीत करने लगे। हनुमान के आगे बढ़ते ही सीता को सन्देह हो गया कि—यह तो रावण ही है। वेष बदलकर मेरे पास आया है। हनुमान को रावण समझकर सीता उन्हें धिक्कारने लगीं। वह बोलीं—

"रे रावण! तू छल करके फिर मुझे कष्ट देना चाहता है! देख, यह ठीक नहीं है। नीच! तू वही है जिसने सन्यासी का रूप बनाकर मुझे बन से चुराया है। मुझ दीन हीन, असहाय, क्षुधा तृषा से व्याकुल अबला को रे कामी! तू बारबार सताता है यह अच्छी बात नहीं है।"

सीता को संशय में और डरी हुई देखकर हनुमान ने अत्यंत विनम्र हो प्रणाम करके कहा—

"माता जी! रामजी ने सुग्रीव से मित्रता की है। मैं उसी सुग्रीव का मंत्री हनुमान हूँ। अपने पुरुषार्थ से समुद्र तैरकर तेरे

देखने के लिए मैं यहाँ आया हूँ। विश्वास रखो मैं रावण या उसका भेजा हुआ कोई राक्षस नहीं हूँ। जो भूषण और वस्त्र आपने आकाश से गिराये थे, वे मैंने ही श्रीरामजी को बताए हैं। वे देव-तुल्य राम तुम्हारे बिना अत्यन्त दुखी रहते हैं। वे इस रावण को सकुटुम्ब मारकर तुझे यहाँ से जल्दी ही ले जावेंगे। मैं श्रीरामजी का दूत हूँ। यह उन्होंने अपनी अँगूठी निशानी के रूप में तुम्हारे पास भेजी है।

सीता ने हनुमान से अँगूठी ले ली। उसे उस अँगूठी से श्री-राम जी से मिलने के समान आनन्द हुआ। जिस तरह राहु से छूटकर चंद्रमा प्रकाशमान होता है, उसी तरह इस समय सीता देवी का मुँह चमकने लगा। उसने हनुमान की प्रशंसा करते हुए कहा—"हनुमान ! तू बड़ा शूर समर्थ और बुद्धिसम्पन्न है। तू ने रावण जैसे पराक्रमी राक्षस की नगरी में अकेले निर्भयतापूर्वक प्रवेश कर बड़े ही साहस का कार्य किया है। तू ने भयंकर जल जन्तुओं से भरे समुद्र को पार किया—वास्तव में तेरा पुरुषार्थ धन्य है। तू साधारण नहीं बल्कि असाधारण योद्धा है। वीर ! यह तो कहो श्रीराम अपने भाई सहित प्रसन्न तो हैं। वे मेरी भी याद करते हैं या नहीं ? मुझे इस बन्धन से छुड़ाने का वे क्या प्रयत्न कर रहे हैं ?"

इत्यादि अनेक प्रश्न सीताजी ने हनुमान से किये। हनुमान ने उत्तर में निवेदन किया—"माता। श्रीरामजी को तुम्हारा पता न होने से वे विवश हैं। तुम्हारे वियोग से वे अत्यंत दुखी

हैं—उनका खान-पान सुख सब नष्टप्राय हो गया है। रात को उन्हें अच्छी तरह नींद नहीं आती। नींद से जागने पर "सीते ! प्राणवल्लभे !" इत्यादि शब्दों को बोलकर ठण्डी साँसें लिया करते हैं। मैं अब जाकर तुम्हारी खबर उन्हें दूँगा, तो वे शीघ्र ही दलबलसहित लंकापर चढ़ाई कर ससैन्य रावण को मार तुम्हें ले जावेंगे। तुम निश्चित रहो। अब शीघ्र ही अपने दुःखों का अंत समझो।"

सीता ने कहा—"कपिराज ! तू शीघ्र ही जाकर राम को मेरा समाचार दे। कहीं ऐसा न हो कि वर्ष पूरा हो जाय और रावण मुझे मार डाले। क्योंकि अब केवल दोही महीने बाकी हैं। रावण के भाई विभीषण ने उसे समझाया था कि "तू सीता को लौटा दे, लंका में मत रख ?" परन्तु उस पापी ने एक भी नहीं मानी। यह बात मुझे विभीषण की बड़ी कन्या कला देवी से मालूम हुई थी। मुझे निश्चय है कि रावण की मृत्यु निर्भयता-पूर्वक उसके सिर पर खेल रही है।

इसी प्रकार रावण के एक बुद्धिमान मंत्री अविन्ध्य ने भी उसे मुझे राम के पास वापस लौटा देने की सलाह दी है, परन्तु वह किसी की भी नहीं मानता। अपने हठ पर अटल है।"

ऐसा कहते हुए सीता के नेत्र आँसुओं से डबडबा आये। यह देख हनुमान बोले—

"अथवा मोचयिष्यामित्वामद्यैव सराक्षसात्।
अस्माद्दुःखादुपारोह मम पृष्टमनिन्दिते ॥" (वा० रा०)

मैं राक्षसों के पंजे से तुम्हें अभी छुड़ा सकता हूँ। आओ तुम मेरी पीठ पर सवार हो। यदि राक्षस युद्ध के लिये आवेंगे तो मैं एक एक को मारूँगा। यहाँ तक कि रावण को भी धराशायी करूँगा।"

प्रसन्न हो सीता ने कहा—"मैं श्रीरामजी के बिना अपनी इच्छा से किसी भी पर पुरुष को स्पर्श करना नहीं चाहती। यदि तुम मुझे ले जाओगे तो रघुनाथजी की कीर्ति में त्रुटि आवेगी।" सीता के युक्तियुक्त वाक्यों को सुन, हनुमान बोले—

"सती शिरोमणे! तुम धन्य हो। ऐसे वचन सिवा राम की पत्नी के और कौन कह सकता है? तुम्हारी इन बातों से श्रीराम को सन्तोष होगा। मैंने जो कुछ भी निवेदन किया है वह अपनी सामर्थ्य के अनुकूल ही कहा है। यदि तुम मेरे साथ श्रीरामजी के पास नहीं चलना चाहती तो आप मुझे कोई अपनी निशानी दें, जिससे राम यह जान सकें कि यह सीता से मिलकर आया है।"

सीता ने अपनी एक चूड़ामणि हनुमान को देकर कहा, "महावीर! तू श्रीरामजी से बनवास के समय इन्द्र के पुत्र जयन्त की नीचता याद करने के लिये कहना। इससे परिचय हो जायगा। और कहना कि नाथ! शीघ्र ही मुझे पापी के बन्धन से छुड़ाओ।"

हनुमान ने चूड़ामणि लेकर सिर से लगाई और तथास्तु कहकर वहां से चल दिये। उन्हें चलते देख सीता को दुःख हुआ, और फिर बुलाकर कहने लगीं—"महाबाहो! श्रीरामजी से कहना कि मुझे वे शीघ्र ही इस दुःख-सागर से पार करें।—"

हनुमान ने कहा—"माता ! निश्चिंत होओ, श्रीराम शीघ्र ही शत्रुओं को मार, तुम्हारा दुःख हरेंगे। राम के धनुष से छूटे बाणों की चोट से आज ऐसा त्रिलोकी में कोई नहीं जो जीवित रह सके।"

सीताने कहा—"यदि उचित समझो तो तुम यहाँ एक दिन और विश्राम करो, क्योंकि तुम्हारे रहने से मेरा शोक कुछ कम हो जावेगा। तुम्हारे पुनः आने तक मैं शायद ही जीवित मिलूँ ! मुझे तो अभी यही संदेह है कि राम सेनासहित यहाँ कैसे आ सकेंगे—क्योंकि समुद्र की लम्बाई कुछ कम नहीं है।"

हनुमान ने कहा—"मुझ सरीखे अनेक वीर सुग्रीव की सेना में हैं, मैं तो अत्यल्प बलवाला यहाँ भेजा गया हूँ। तुम इस चिंता को त्याग ही दो कि "राम यहाँ कैसे आवेंगे।" वे आवेंगे और रावण को मारकर तुम्हें शीघ्र ही ले जायेंगे। मुझे अब जाने की आज्ञा दीजिये।"

हनुमान ने आदरपूर्वक सीता को प्रणाम किया और चल दिये।

वाटिका विध्वंश

नीतिपरायण हनुमान ने सीता देवी से आज्ञा प्राप्तकर वापस चलने की तय्यारी की। थोड़ी दूर चलकर मन ही मन सोचन लगे—

"मैंने अपना खास कार्य तो कर लिया, अब मुझे शत्रु का बल भी देख लेना चाहिए, ताकि युद्ध में इस विषय का ज्ञान रहे। मुझे अब रावण का बल देखने के लिये किसी प्रकार उससे मुठ-भेड़ लेनी चाहिए। बिना छेड़-छाड़ किये काम नहीं चलेगा। इस-लिये मुझे रावण का यह अत्यन्त सुन्दर उपवन बर्बाद कर देना चाहिये। जब मैं इसे मिट्टी में मिला दूँगा तो निस्संदेह रावण क्रुद्ध होकर अपने बड़े से बड़े बलवान योद्धाओं को मेरे से लड़ने भेजेगा। तब इसके बल का पता लग जायगा।"

ऐसा सोचकर हनुमानजी ने उस बगीचे को मत्त हाथी की भाँति घूम घूमकर नष्टकर डाला। बगीचे की यह दशा देखकर कुछ राक्षसियाँ दौड़कर रावण के पास गईं और सारा हाल कह सुनाया। रावण ने अपने बड़े से बड़े योद्धाओं को हनुमान को दमन करने के लिये भेजा। विविध हथियार लिये राक्षसों ने हनुमान को वहाँ आ घेरा। हनुमान ने द्वार के पास का एक लोह दण्ड उठाकर राक्षसों को इतना कूटा कि जो भागे वे ही बचे बाकी सब यमलोक के अतिथि हुए।

भागे हुए रासक्षों ने रावण को सारा हाल जा कहा। तब रावण ने क्रुद्ध होकर अपने छँटे हुए योद्धाओं को हनुमान के साथ युद्ध करने की आज्ञा दी। प्रहस्त का पुत्र जम्बुमाली खच्चरों के रथ में बैठकर, हाथ में भीषण धनुष लिये हनुमान के सामने युद्धार्थ आया। आते ही राक्षस ने बाण वृष्टि कर हनुमान के शरीर को बाणों से बींध दिया। हनुमान ने "जय श्रीराम जय लक्ष्मण"

कहकर जम्बुमाली के हृदय का लक्ष्य कर परिध फेंकी। लगते ही राक्षस के प्राण-पखेरू उड़ गये और रथ से नीचे आ गिरा। इसके मरते ही रावण के सातमंत्री-पुत्र एक फौज की टुकड़ी लिये हनुमान के आगे आ डटे और लगे अस्त्रशस्त्र चलाने। हनुमानजी के पास सिवाय उस परिध (लोह दण्ड) के और कुछ भी नहीं था। वे राम लक्ष्मण की जय बोलते हुए उनपर टूट पड़े और सातों को वहीं ढेर कर दिया। बची खुची सेना वहाँ से प्राण लेकर भाग गई।

अब तो रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघस और भासकर्ण नामक पाँच सेनापतियों को सेनासहित कपिकुञ्जर हनुमान से युद्ध करने के लिये भेजा। आते ही दोनों ओर से मारकाट मच गई। देखते ही देखते महावीरजी ने उनकी लाशों से पृथ्वी पाट दी। सेनापतियो को यमलोक के मार्ग का पथिक बना दिया। जो लोग बचे थे वे प्राण लेकर भाग गये। इस प्रकार विजयी हनुमान उस बागीचे में परिध उठाये द्वितीय यम की भाँति घूमने लगे।

इस बार रावण ने अपने पुत्र कुमार अक्ष को बहुत कुछ उत्साहवर्द्धक, और वीरोचित शब्दों से सम्बोधित करके हनुमान से युद्धार्थ भेजा। सब को आशा थी कि इस बार हनुमान पकड़ लिये जावेंगे, परन्तु ज्योंही कुमार यक्ष सामने आया—हनुमान ने उसे इस प्रकार अपने पेंच में गाँठा जैसे गरुड़ किसी भयङ्कर सर्प को दृढ़ता से पकड़ता है। हनुमान ने इसे उठाकर

जोर से पृथ्वी पर पटक मारा। गिरते ही उसकी भुजाएँ, टाँगे, कमर, और छाती टूट गई। मुँह से खून बहने लगा। हड्डियाँ चूर्ण हो गईं—हड्डियों के जोड़ खुल गए। प्राणहीन शरीर पृथ्वीपर पड़ा पहाड़ सा दिखाई पड़ने लगा। सारांश कि जो भी पवनपुत्र महावीर के सामने आया, वही मारा गया। कुमार अक्ष को मार कर हनुमान ने बड़े जोर से सिंह गर्जना की, जिसे सुनकर सारे नगर निवासियों का हृदय काँप गया।

कुमार अक्ष की मृत्यु का समाचार पा रावण बड़ी ही चिंता में पड़ा। बहुत कुछ सोच-विचार के बाद उसने अपने महापरा-क्रमी पुत्र इन्द्रजित् को हनुमान को जीवित पकड़ लाने के लिये भेजा इन्द्रजित् को आता देखकर हनुमान ने कानों के पर्दों को फाड़नेवाली एक कर्कश चीत्कार की और "जय राम जय लक्ष्मण" कहकर आगे बढ़ा। दोनों में बड़ी देर तक घोरतर संग्राम होता रहा, परन्तु युद्ध से कोई भी हटना नहीं चाहता था। इन्द्रजित् ने हनुमान पर कई प्रकार के प्रहार किये किन्तु सब व्यर्थ हुए। यह देखकर इन्द्रजित् ने निश्चय किया कि यह वीर अवध्य है—इसे ब्रह्मास्त्र चलाकर हनुमान को बाँध लिया। हनुमान निचेष्ट होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। तब राक्षसोंने सन की रस्सियों से और वृक्षों की छालों से उन्हें और बाँध लिया। मत्त हाथी की भाँति बाँधकर हनुमान को वे लोग रावण की सभा में ले गये।

हनुमान ने सभा में पहुँचने पर देखा कि अपने मंत्रियों के साथ तेजस्वी रावण राज्यासन पर बैठा हुआ है। हनुमान ने मन

ही मन सोचा—"यदि इसमें पाप की प्रवृत्ति न हो तो यह राक्षस-राज इन्द्रसहित देवलोक का भी राजा बन जाता।" हनुमान को सामने खड़ा देखकर क्रोधपूर्वक रावण ने उनकी ओर देखकर प्रहस्त से कहा—तुम इससे पूछो यह कौन है ? यहाँ क्यों आया है ? और वाटिका को क्यों नष्ट किया ?" प्रहस्त ने हनुमान से पूछा—

"रे वानर ! तू निर्भय होकर बता कि क्या तुझे इन्द्र ने भेजा है—अथवा यम कुबेर वरुण का दूत बनकर लंका में आया है ? सत्य बता, तुझे विष्णु ने तो नहीं भेजा है। जिस कारण तू यहाँ आया है, वह सत्य कह दे, अन्यथा तेरा बचना कठिन है।"

हनुमान ने कहा—मुझे यम वरुण, कुबेर, इन्द्र अथवा विष्णु आदि किसी ने भी नही भेजा है। मैंने राक्षसराज रावण के दर्शनों की इच्छा से ही वाटिका को नष्ट किया था। जब युद्धकी इच्छा से बड़े बड़े बलाभिमानी योद्धा आ गये तो मुझे अपनी रक्षा के लिये उनसे लड़ना पड़ा। लड़ाई में वे मेरे हाथों मारे गये इसमें मेरा क्या दोष ? मैं महातेज-धारी श्रीरामजी का दूत हूँ। सुग्रीव का भेजा हुआ यहाँ आया हूँ। मैंने राम की पत्नी सीता को तेरे यहाँ देखा है। इसलिये मैं प्रार्थना करता हूं कि तू पर स्त्री हरण का पाप संचित न कर। तेरी भलाई इसी में है कि धर्मात्मा राम की भार्या उन्हें लौटा दे नहीं तो उनके निषङ्गों से निकले हुए बाण तुझे इस नीच कार्य का मजा चखावेंगे। बाली जैसे बलवान वीर को—जिसके अपरिमित बल से तू अच्छी तरह परिचित है,

राम ने एक ही बाण से मारा है। रावण ! राम से शत्रुता करने में तेरी भलाई नहीं है। अतएव तू राम की पत्नी को लौटा दे।"

हनुमान के वचन सुनकर रावण आग बबूला हो गया। उसने हनूमान को वध कर देने की आज्ञा राक्षसों को दे दी। परंतु धर्मात्मा विभीषण के नीति वाक्यों से उसने अपनी भूल स्वीकार की और कोई दूसरा दंड दे देने का हुक्म दिया। अन्त में हनुमान का लांगूल जलाकर उसे विरूप एवम् लज्जित करने का निश्चय हुआ। राक्षसों ने हनुमान के लांगूल को कपड़ों से लपेटा और उस पर तेल, घृत आदि पदार्थ डालकर उसमें आग लगा दी। राक्षसों ने हनुमान को पकड़-कर सारी लंका में घुमाया। परन्तु हनुमान ने अपने को राक्षसों के हाथ से छुड़ा लिया और तत्काल ही दौड़कर एक लोहदण्ड उखाड़ लिया। द्वितीय यमराज के तुल्य महावीर लोह दण्ड उठाये, सिंहनाद करते हुए ऊँचे महल और अटारियों पर निर्भ-यता पूर्वक चक्कर काटने लगे। जिस घर पर वे जाते वही घर जलने लगता। इस प्रकार हनुमान ने सारी लंकापुरी को अग्नि के सिपुर्द कर दिया। विभीषणजी के भवन को आपने छोड़ दिया फिर दौड़कर रावण के महलों पर जा चढ़े, वे भी धक धक करके जल उठे। सारी लंका में भगदड़ मच गई। जो राक्षस कुछ समय पहिले हनुमान को पकड़कर प्रसन्नता मना रहे थे वे ही अब अपनी प्राण रक्षा में संशय करने लगे। सारे नगर में त्राहि त्राहि मच गई। जिस प्रकार प्रलयङ्कर शंकर ने त्रिपुर को जला-कर धूल में मिला दिया था, उसी तरह हमारे चरितनायक ने

लंका को भस्मसात् कर दिया। स्त्री, बच्चे, वृद्ध, असहाय की भाँति इधर-उधर घूमने लगे। लाखों राक्षस गृहहीन हो गये। करोड़ों अरबों स्वर्ण मुद्राओं का माल देखते ही देखते अग्नि देव ने स्वाहा कर दिया।

जिस समय हनुमान ने लंका में अग्नि लगाना शुरू किया उसी समय इतने जोर से अनुकूल हवा चली कि थोड़ी ही देर में अग्नि सारे नगर में फैल गई। लोगों को बुझाना कठिन हो गया। अग्नि की बढ़ती हुई भीषणता देखकर लोगों के छक्के छूट गये। घरों से सामान निकालना भी कठिन पड़ गया। असंख्य हाथी, घोड़े, खच्चर, ऊँट, भैंस, भैंसे, आदि पशु जल मरे। सारी लंका को जलती देखकर हनुमान हर्षपूर्वक बारंबार सिंहनाद और चीत्कार करने लगे। पवन ने अपना रुख बदलकर अशोक वन और विभीषण के भवन को बाल बाल बचा दिया।

इसके बाद हनुमान ने समुद्र तट पर पहुँचकर अपने लांगूल की अग्नि को शान्त किया और कुछ देर बैठकर अपनी थकान कम की। थोड़ी देर बाद फिर सीताजी की सेवा में उपस्थित हो सारा वृत्तान्त कहा, जिसे सुन सीता देवी को परम हर्ष हुआ। इसके बाद हनुमानजी ने सीता से जाने की आज्ञा प्राप्त की और अत्यंत आदरपूर्वक अभिवादनकर लौटने के लिये समुद्र के किनारे पर आये।

राम से सीता-समाचार वर्णन
और युद्ध-यात्रा

बगीचा उजाड़कर, राक्षसों को मार, सीता से मिलकर और लंका में आग लगाने बाद हनुमान मेघ-गर्जना करते हुए, वापस लौटने की इच्छा से समुद्र में कूद पड़े। धनुष से छूटे हुए बाण की भाँति हनुमान बड़ी तेजी से समुद्र में आगे की तरफ बढ़ने लगे। मार्ग में मैनाक पर्वत पर विश्राम लेकर समुद्र के किनारे पहुँचे। जाम्बवान अंगद, आदि अपने जाति बान्धवों को देखकर हनुमान ने बड़े जोर से हर्षनाद कर, उन्हें अपने आने की सूचना दी। उन्होंने हनुमान के शब्द से अनुमान कर लिया कि "महावीर ने कार्य में सफलता प्राप्त की है।"

हनुमान के किनारे पहुँचते ही, सब लोग उन्हें घेरकर बैठ गये। जाम्बवान के पूछने पर महावीर ने कहा—"हाँ देखी है। सीतादेवी रावण की लंका में है?"

हनुमान के अमृत तुल्य वाक्य सुनकर अंगद ने कहा—

"हनुमान! तुम धन्य हो। बलवीर्य में तुम्हारे समान कोई दूसरा नहीं है। यह तुन्हारी ही शक्ति है जो तुमने इतना विस्तृत समुद्र पारकर राक्षसों से पूर्ण लंका में घुसकर सीता का पता लगाया तुम्हारी इस सफलता के लिये मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। हमारी यह जानने की इच्छा है कि तुमने वहाँ जाकर कैसे पता लगाया?"

अंगद की बात सुन, हनुमान ने आदि से लेकर अंत तक सब वृत्तान्त कह सुनाया। राक्षसों की पुरी में, उनकी वाटिका विध्वंश, राक्षसों से युद्ध और लंकादहन का हाल सुनकर सबको अत्यंत हर्ष हुआ और हनुमान के पुरुषार्थ की मुक्त कंठ से प्रशंसा करने लगे।

हर्ष मनाते हुए सब लोग किष्किन्धा के लिये चल पड़े। मार्ग में सुग्रीव के मामा दधिमुख के मधुवन नामक बगीचे में कन्द-मूल खाते हुए सब योद्धा प्रस्रवण नामक पर्वत पर जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने राम-लक्ष्मण को प्रणामकर सीता का समाचार कहना आरंभ किया। हनुमान ने चूड़ामणि श्रीरामजी के हाथ में देकर कहा—

"स्वामिन्! सौ योजन समुद्र को लाँघकर मैंने राक्षसों की पुरी लंका में देवी सीता को दीनहीन, मलीन वेष में देखा है। वह राक्षसियों से घिरी हुई, रावण से अपने सतीत्व की रक्षा करती हुई, जीवित है। वह रात-दिन आपके नाम का जप करती है—उसका मन आपके चरणों में तल्लीन है। उसने यह चूड़ामणि निशानी के रूप में दी है, और इन्द्र के पुत्र जयन्त की घटना का स्मरण कराया है।

मैंने सारा वृत्तान्त सीताजीसे निवेदन कर दिया है। वे सुग्रीव से आपकी मित्रता का हाल सुनकर बड़ी ही प्रसन्न हुई हैं। अब वे एक महीने भर और जीवित रहेंगी, क्योंकि १२ वें महीने रावण उन्हें मार डालेगा। मैंने शत्रु-बल देखने की इच्छा से

रावण की वाटिका का विध्वंश किया और रावण के कई बड़े बड़े योद्धाओं को यमलोक भेज दिया। तब ब्रह्मास्त्र द्वारा इन्द्र-जित् ने मुझे बाँध लिया और रावण के पास पकड़कर ले गया। रावण ने पहिले तो मेरे वध की आज्ञा दी किंतु विभीषण के सम-झाने से उसने मेरे लांगूल में आग लगा दी। मैंने उसी आग से सारे नगर को जलाकर भस्म कर दिया। चलते वक्त भगवती सीता देवी से फिर मिला तो उन्होंने बार बार मुझसे यही कहा है कि "श्रीरामजी से कहना कि मुझे अवधि से पूर्व ही ले जावें वर्ना मैं जीवित नहीं मिलूँगी।"

हनुमान की बातें सुन राम-लक्ष्मण को हर्ष और दुःख दोनों हुए। उन्होंने मणि को हृदय से लगाकर विलाप किया। बाद में साश्रुनेत्रों से राम ने हनुमान से कहा—"महात्मन्! आपने मेरे साथ वह उपकार किया है, जिसकी भूतल पर कोई कल्पना तक नहीं कर सकता था। मैं इस समय दीन अवस्था में हूँ, आपको क्या पुरस्कार दूँ। मेरे पास इस समय यह हृदय है, सो हे आंजनेय! आओ मेरे हृदय से हृदय लगाकर गले में मिल लो। इस समय मेरा यही सर्वस्व है।"

ऐसा कहकर राम ने हनुमान को प्रगाढ़ आलिंगन कर अपने साथ किये उपकार का आभार प्रदर्शन किया। इसके बाद रामचन्द्रजी सुग्रीव से सलाह करने लगे कि—"समुद्र कैसे पार करेंगे? और सीता कैसे प्राप्त करेंगे?" सुग्रीव ने उत्साह-

वर्द्धक वचनों को बोलकर रामके संतप्त हृदय को शान्ति प्रदान की। इसके बाद फिर श्रीराम ने हनुमान् से पूछा—

"महाबाहो! तुम रावण का बलाबल बताओ। यह बताओ कि लंका के दुर्ग कितने हैं? सेना कितनी है? दुर्गों में प्रवेश करने के द्वार कैसे हैं? लंका-निवासियों के घर कैसे हैं?

हनुमान ने कहा—"सुनिये मैंने वहाँ अच्छी तरह घूम फिरकर सब कुछ देखा है। मैं सब वृत्तान्त सुनाता हूँ। राघवेन्द्र! लंका आनन्द और हर्ष का केन्द्र है। वहाँ अनेक मतवाले हाथी हैं। उसके पास अगणित रथ, घोड़े, और रणबाँकुरे योद्धा हैं। लंका दुर्ग के बड़े द्वार चार हैं—जिनपर दृढ़ और विशाल किवाड़ हैं। द्वारों के चारों ओर गोलाबारी के अस्त्र मौजूद हैं। उनके ऊपर बुर्जों में अश्मवर्षण यंत्र हैं। क़िले पर सैकड़ों तोपें रखी हैं जो शत्रु-सेना को आगे बढ़ने से रोक सकती हैं। कोट के चारों ओर जल और जलजन्तुओं से भरी हुई अगाध खाई है। खाई के ऊपर से द्वारों में जाने के लिये ऐसे पुल हैं जो खोले और समेटे जा सकते हैं। जब शत्रु-सेना आती है तो पुल समेट लिये जाते हैं और दुश्मन खाई में फेंक दिये जाते हैं।

उनमें एक अकम्प नामक बड़ा दृढ़ संक्रम है, जो सोने के विविध स्तंभों से सुशोभित है। लंका इसके आगे एक पर्वत-शिखर पर है, वहाँ पर भी खाई, दुर्ग, तोपें अनेक प्रकार के युद्ध-यंत्र हैं।"

हनुमान की बातें सुन राम ने प्रसन्नतापूर्वक सुग्रीव से सेना तय्यारकर लंकापर आक्रमण करने की सम्मति दी। आज्ञा पाते

ही सुग्रीव ने सेना को एकत्रकर शीघ्रतापूर्वक लंका के लिये प्रस्थान किया और शीघ्र ही समुद्र के किनारे पहुँच गये । यहाँ छावनी डालकर समुद्र पार करने की तदबीर सोचने लगे ।

श्रीराम सेनासहित बैठे उपाय सोच ही रहे थे कि इसी बीच आकाश से एक विमान उतरता हुआ दिखाई दिया । हनुमान ने कहा—"महाराज ! हमारे नाश के लिये राक्षस आता है हमें इसके वध करने की आज्ञा दीजिये ।" इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि विभीषण ने सुग्रीव की सेवा में पहुँचकर कहा—"मैं रावण का छोटा भाई विभीषण हूँ । मैंने रावण को सीता लौटा देने की सम्मति दी तो उसने भरी सभा में मेरा घोर अपमान किया अतएव मैं श्रीरामजी की शरण आया हूँ, उन्हें यह मेरी प्रार्थना आप सुना दें ।"

सुग्रीव ने राम को विभीषण का सन्देशा जा कहा । परंतु सुग्रीव जाम्बवान और अंगद आदि किसी को भी विभीषण पर भरोसा नहीं आया । सबने इसको कपटी, छली, धूर्त्त और गुप्त-चर समझा । तब हनुमान ने कहा—

"अवधेश ! मुझमें आपके सामने कुछ कहने की योग्यता तो नहीं है । किन्तु इन मन्त्रियों की कुछ बातों के विषय में मैं निवेदन कर देना चाहता हूँ, कि पर-पक्ष से आये किसी पुरुष के खिलाफ एकदम इस तरह अपने विचार प्रगट करना ठीक नहीं है । जो कुछ भी सन्देह इसके विषय में हो रहा है, उसका कोई प्रमाण ही नहीं । हाँ, एक सन्देह हो सकता है कि "शरण में

आने के लिये यह कोई देश काल नहीं है। परन्तु ऐसा संदेह भी ठीक नहीं क्योंकि दुखी पुरुष के लिये देश और काल देखने की जरूरत ही नहीं पड़ती। मैं तो विभीषण की इस बुद्धि की प्रशंसा करता हूँ और कहूँगा कि उसने समयोचित कार्य किया है।

यदि आपको उस पर शक ही है तो अपने गुप्तचरों द्वारा उसका भेद मालूम कर लें। बातचीत से भाव मालूम हो जाते हैं। मेरे विचार से तो उसकी वाणी में दुष्टता का लेश नहीं है। उसका मुख प्रसन्न है—मुझे तो इसकी धर्म-बुद्धि पर आज ही नहीं बल्कि तभी से विश्वास है जब कि इसने रावण की सभा में मेरे वध के हुक्म का खण्डन करते हुए मेरे लांगूल-दाह की आज्ञा कराई थी। इसका व्यवहार और आचार सरल है—यह आपके शरणागत है इसकी रक्षा करना आपका कर्त्तव्य है।

हनुमान की बातों से सबों को विश्वास हुआ और श्रीराम ने सुग्रीव आदि से परामर्श कर विभीषण को पास बुला उससे बातचीत की। शुद्ध-हृदय विभीषण ने सब बातें निष्कपट हो राम से कह दीं। राम ने समुद्र का जल मँगाकर विभीषण को लंका का राजतिलक कर दिया। इसके बाद विभीषण की सलाह से नल ने समुद्र का पुल दसयोजन चौड़ा और सौयोजन लम्बा पाँच दिन में वानरों की सहायता से तय्यार कर दिया। जिस पर से चलकर समस्त राम-दल समुद्र पार हो गया। और लंका की सीमा में इन्होंने अपनी फौजों की छावनियाँ डाल दीं। रावण के गुप्तचर और रामके गुप्तचर एक दूसरे की फौजों में जाकर भेद

लाने लगे। रावण ने दूत भेजा और श्रीरामजी ने भी अंगद को दूत बनाकर रावण के पास भेजा। जब कुछ समझौता होता दिखाई नहीं पड़ा तब राम ने लंकापर आक्रमण करने की अपने सेनापतियों को आज्ञा दे दी। रामदल ने लंका को चारों ओर से घेर लिया। रावण के सैनिक भी मुकाबिले के लिये आ गये। घमासान युद्ध छिड़ गया। रक्त-मांस की कीचड़ मच गई।

अपनी अपनी जोड़ी देखकर एक दूसरे से द्वन्द-युद्ध करने लगे। हनुमानजी का युद्ध जम्बुमाली नामक राक्षस से होने लगा। दोनों का गदा-युद्ध आरंभ हुआ। महावीर इस युद्ध में बड़े ही प्रवीण थे उन्होंने मौका पाते ही जम्बुमाली को एक ऐसी गदा जमाई कि वह पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु वह उसी क्षण सँभलकर खड़ा हो गया और हनुमान ने आते ही उसे ऐसा पछाड़ा कि उसे बहुत देर के लिये मूर्च्छा आ गई। हनुमान उसे मूर्छित छोड़-कर दूसरी तरफ जाकर राक्षसों के झुंड में इस प्रकार टूट पड़े जैसे सिंह हाथियों के दल में पहुँचकर उन्हें तितर-बितर कर देता है।

धूम्राक्ष-वध

दूसरे दिन इन्द्रजित् बड़े क्रोधपूर्वक रण-भूमि में आया और राम-लक्ष्मण से युद्धकर उन्हें मूर्च्छित कर दिया। रामचन्द्र की सेना में हाहाकार मच गया। गरुड़ ने आकर नागपाश काटे।

राम-लक्ष्मण फिर होश में आगये। इससे रावण बड़ा दुखी हुआ और उसने धूम्राक्ष को एक बड़ी भारी सेना देकर युद्धार्थ भेजा। धूम्राक्ष लंका के पश्चिम द्वार से बाहर निकला। इस द्वारपर हमारे चरितनायक सेनासहित डटे हुए थे। राक्षसों में और हनुमान की सेना में तुमुल युद्ध होने लगा। वीरों के गर्ज्जन और सिंहनाद से दसों दिशाएँ निनादित हो उठीं। राक्षसों ने दिल खोलकर अस्त्र-शस्त्र चलाये, हनुमान की सेना ने भी राक्षसों के दाँत खट्टे कर दिये। दोनों तरफ के अगणित वीर मैदान में काम आये। घायलों से और लोथों से पृथ्वी पट गई। धूम्राक्ष भी वाण-वृष्टिकर वानर-सेना को छिन्न-भिन्न करने लगा। अपनी सेना को भागती और राक्षसों द्वारा नष्ट होती देख हनुमान को अत्यंत क्रोध हुआ। दौड़-कर उन्होंने एक बड़ी भारी शिला को उठा लिया और धूम्राक्ष के रथ पर वेग से फेंक दी। धूम्राक्ष शिला को आती देख, एक गदा हाथ में लिये रथ से नीचे कूद पड़ा। उसका रथ और घोड़े पिस-कर चटनी हो गये धूम्राक्ष सँभल ही रहा था कि इसी बीच थोड़ा अवकाश पाकर हनुमान ने धूम्राक्ष की सेना को मारमारकर छिन्न भिन्न कर दिया। धूम्राक्ष गदा उठाये हनुमान पर प्रहार करने की इच्छा से उनकी ओर दौड़ा। हनुमान भी एक वृहदा-कार शिला लिये उस पर झपटे किन्तु हनुमान का वार होने के पहिले ही धूम्राक्ष ने उनके सिर में लोह-शूल युक्त गदा का प्रहार किया। महावीर गदा-प्रहार से तनिक भी विचलित नहीं हुए और अपनी शिला उसके सिर पर जोर से पटक दी। शिला के प्रहार

से पर्वताकार धूम्राक्ष भूमि पर गिर पड़ा और उसके शरीर से प्राण-पखेरु उड़ गया। अपने स्वामी को मरा देख राक्षस मैदान छोड़कर भागे और लंका में जा घुसे। महावीर की सेना हर्षसूचक ध्वनि करके प्रसन्नता प्रकट करने लगी।

अकम्पन-वध

जब वज्रदंष्ट्र अंगद के हाथों काम आया, तब रावण ने सेनापति को आज्ञा दी कि "अब आप भयँकर पराक्रमी दुर्धर्ष अकम्पन को आगेकर शत्रु-सेना पर आक्रमण करें। आज्ञा पाते ही देव-विजयी अकम्पन मँजे हुए योद्धाओं की सेना लिये रामदल की ओर शीघ्रता से बढ़ा। रामचन्द्रजी की सेना ने भी आगे बढ़-कर अकम्पन का सामना किया। दोनों ओर से प्रहार आरंभ हुआ। योद्धाओं का तुमुल शब्द सुनाई पड़ने लगा। दोनों ओर की सेनाओं के चलने से इतनी धूल उड़ी कि योद्धाओं का मुँह दिखना कठिन हो गया। आपस में बिना अच्छी प्रकार देखे एक दूसरे से पिल पड़े। रामचन्द्र की सेना के योद्धाओं ने राक्षसों को गिन गिन कर मारना आरंभ कर दिया। अपने सैनिकों को नष्ट होते देख अकम्पन ने अपने सारथी से अपना रथ वहाँ पहुँचाने को कहा— जहाँ कुमुद, नल, और मयन्द राक्षस सेना को पादाक्रान्तकर प्रलय का दृश्य दिखा रहे थे। आज्ञा पाते ही रथ वहाँ पहुँचा दिया। हनु-

मान अकम्पन को दूर से ही अपने वीरों की ओर बढ़ते देख क्रोधपूर्वक वहाँ दौड़कर आ पहुँचे। हनुमान को सामने देखकर अकम्पन ने वाण-वृष्टि आरंभ कर दी। जिस प्रकार पर्वत पर आकाश से वर्षा की बूंदें पड़ती हैं उस तरह वाण महावीर के शरीर पर बरसने लगे। हनुमान हँसते हुए उसके वाणों का प्रहार सहते रहे। इन्हें हँसते देख अकम्पन और वेग से निशित वाण वलपूर्वक फेंकने लगा। अब तो हनुमान का क्रोध बढ़ गया। वे सिंहनाद करके उसकी ओर यमराज की भाँति दौड़े। वृक्ष हाथ में उठाये, तेज से चमकते हुए हनुमान का रूप अत्यन्त भयानक मालूम होने लगा। पहुँचते ही हनुमान ने अकम्पन पर इतने बलपूर्वक वृक्ष का प्रहार किया कि वह राक्षस वहीं ढेर हो गया। अपने सेनानायक को मरा देख राक्षस लोग अपने प्राण ले लेकर भागने लगे और रामचन्द्र की सेना हर्षध्वनिकर आकाश को गुञ्जाने लगी।

रावण से मुठभेड़

अपने बड़े-बड़े शूर योधाओं को, रामचन्द्र के योधाओं द्वारा मरते देखकर रावण को अत्यंत दुःख हुआ। वह घबरा गया और सोचने लगा कि क्या उपाय किया जाय जिससे शत्रु का मान मर्दन हो। जब उसे कोई अच्छा योद्धा नहीं दिखाई पड़ा

तो स्वयं बड़े भीमकाय रणदुर्ज्जय राक्षसों की सेना लेकर युद्ध में आया। उसने आते ही वानर-सेना पर इतने अस्त्र-शस्त्र फेंके कि सब योद्धा व्याकुल हो गये। वानर राम-लक्ष्मण और सुग्रीव को पुकारते हुए अनाथ की भाँति इधर-उधर घूमने लगे। यह बात हनुमान से नहीं देखी गई, वे दौड़कर रावण के आगे आये और आते ही एक इतने जोर की लात जमाई कि रावण बेहोश होकर गिर पड़ा। जब उसे मूर्च्छा से चेत हुआ तो रावण ने कहा।

"धन्य है इसके माता-पिता को जिसमें इतना पुरुषार्थ है कि एक लात के कारण मेरा होश-हवाश जाता रहा।"

होश आने पर रावण फिर युद्ध के लिये बढ़ा। रामचन्द्र को रोककर लक्ष्मण ने उसका सामना किया। दोनों में घोर संग्राम हुआ। रावण ने लक्ष्मण के हृदय पर शक्ति फेंक मारी जिससे वे बेहोश होकर गिर पड़े। रावण लक्ष्मण को उठाकर ले जाने का प्रयत्न कर ही रहा था कि हनुमान ने आकर रावण की छाती में इतने जोर से घूँसा जमाया कि रावण घुटनों के बल गिर पड़ा, मुख से रक्त-स्राव होने लगा। तब हनुमान लक्ष्मण को उठाकर अपनी सेना में ले गये।

अब रावण धनुष उठाकर श्रीरामजी पर झपटा। श्रीराम भी हनुमान के कन्धे पर बैठकर युद्ध के लिये उस दुष्ट के सामने आये। रावण ने रामचन्द्रजी पर तो बाण चलाये ही परंतु हनुमानजी के शरीर को भी बाणों की चोट से लोहू-लुहान कर दिया। यह देखकर राम को क्रोध आया और उन्होंने रावण पर

एक वज्रतुल्य वाण फेंका जिससे वह मूर्च्छित हो गया और फिर लज्जा के कारण लंका में चला गया।

देवान्तक का अन्त

कुंभकर्ण के मारे जाने पर नरान्तक को रावण ने समरांगण में भेजा। परन्तु वह भी युवराज अंगद के हाथों खेत रहा। अपने भाई को मरा देख देवान्तक, त्रिशिरा और महोदर को साथ लिये बालि-तनय अंगद पर दौड़ा। एक साथ तीन राक्षसों को अपने पर हमला करते देख अंगद अविचल रहा—घबराया नहीं। परंतु अंगद को तीन राक्षसों द्वारा घिरा देखकर हनूमान नील को साथ लिये वहाँ आ पहुँचे। देवान्तक हनुमान को आया देख एक भीषम परिघ लिये इनपर झपटा वह परिघ प्रहार करना ही चाहता था कि, इतने में लपककर हनुमान ने उसके सिर में वज्र तुल्य एक मुक्का जमा दिया। मुक्के के प्रहार से उसका सिर विदीर्ण हो गया। दाँत आँखें और लम्बी जबान बाहर निकल आई। राक्षसराज का पुत्र देवान्तक प्राणहीन हो, काटे गये कदली वृक्ष की तरह पृथ्वी पर धड़ाम से गिर गया।

नील पर महोदर ने आक्रमण किया, उसे नील ने मारडाला। त्रिशिरा ने धनुष उठाया और पैने पैने वाणों से हनुमान के शरीर छेदने लगा। मौका पाते ही उसने एक भयंकर बर्छी भी हनुमान

पर चलाई। बिजली के समान चमकती हुई बर्छी को पकड़कर महावीर ने टुकड़े टुकड़े कर दिये। अपनी बर्छी को निष्फल देख-कर त्रिशिरा ने खड्ग चलाया। खड्ग के लगने पर हनुमान को क्रोध आया और उन्होंने बलपूर्वक उसकी छाती में एक थप्पण जमाया। थप्पण के लगते ही राक्षस होश भूल गया। उसकी सब शेखी पर पानी फिर गया। पर्वत पर बिजली के गिरने की तरह उस राक्षस को छाती पर हनुमान का थप्पण पड़ा। राक्षस मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़ा और थोड़ी देर छटपटाकर खत्म हो गया। हनुमान ने उसे मरा देखकर शत्रु हृदय भयकारी बड़े ज़ोर की सिंह-गर्ज्जना की, जिसे सुनकर राक्षस लोग घबरा गये।

निकुंभ-वध

युद्ध में दिन प्रतिदिन अपनी हार होती देख इन्द्रजित बड़ी तय्यारी के साथ रणाङ्गण में आ डटा। दोनों ओर से घोरतर संग्राम छिड़ा। इन्द्रजित् आकाश में से युद्ध करता था। उसने इतना भयानक युद्ध किया कि २॥ घण्टे में ६७ करोड़ राम के सैनिक नष्ट कर दिये। इतना ही नहीं, हनुमान और विभीषण को छोड़, बाकी राम लक्ष्मण आदि सभी अचेत हो रणभूमि में गिर पड़े। इन्द्रजित् सबको मरा जान लंका लौट गया। थोड़ी देर बाद होश आने पर जाम्बवान ने हनुमान से कहा—"कपिवर्य!

ऋषभ और कैलास के बीच संजीवनी, सुवर्णकरणी, विशल्य-करणी और संधानकरणी नामक बूटियाँ हैं, सो वहाँ जाकर शीघ्र लाओ।" आज्ञा पाते ही हनुमान गये और दवा न पहिचानने के कारण सारा पर्वत उखाड़ लाये। जांबवान के कथनानुसार हनुमान और विभीषण ने अपने दल के लोगों की दवा की। सब जी उठे।

यह खबर सुनकर रावण को अपार दुःख हुआ। तब उसने यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजंघ, कम्पन, कुंभ और निकुंभ को युद्धार्थ भेजा। इनमें से यूपाक्ष, प्रजंघ, कम्पन और शोणिताक्ष को अंगद द्विविद और मयन्द ने मार डाला। कुंभ ने अंगद को मूर्च्छित कर दिया। अंगद को गिरते देख सुग्रीव उधर झपटा और कुंभ का काम तमाम कर दिया। अपने भाई को मरा देख निकुंभ का रक्त गुस्से से खौल उठा। उसने एक भयानक परिध उठाया और वानरों की ओर दौड़ा। उसे द्वितीय यम की भाँति आता देख वानर लोग भागने लगे। किन्तु हनुमान उसके सामने डटे रहे। निकुंभ प्रहार करने भी नहीं पाया था कि झपटकर हनु-मान ने उसे पकड़ लिया और उसे झकझोर डाला। ऐसा करने से वह जब अधमरा हो गया तब उसे नीचे पटककर उसकी दोनों भुजाएँ पकड़ लीं और गर्दन मरोड़कर सिर फोड़ दिया। इस तरह निर्दयतापूर्वक हनुमान ने राक्षसों के सामने उस पापात्मा को पीसकर सिंहनाद किया।

मेघनाद से युद्ध

मेघनाद ने एक बड़ी भारी चालाकी खेली। वह माया की एक कृत्रिम सीता बनाकर लाया और रथ पर लिये पश्चिम द्वार पर पहुँचा। उसने राम की सेना के आगे उसे निर्दयता पूर्वक वध किया और कह दिया कि "सीता को मार डाला, अब तुम वापस लौट जाओ व्यर्थ क्यों युद्ध में मर रहे हो।" ऐसा कहकर वह सेनासहित निकुंभिला चैत्य में यज्ञ करने के लिये चला गया और वहाँ जाकर यज्ञानुष्ठान करने लगा।

इधर राम-दल में सीता-मरण के सम्वाद से हाहाकार मच गया। रामचन्द्र भी विलाप करने लगे। तब सुग्रीव ने भेद बताया कि वह कृत्रिम सीता थी। मेघनाद तो निकुंभिला में यज्ञार्थ गया है—यदि उसका यज्ञ सफल हुआ तो समझ लीजिये कि फिर उसका मरना कठिन है।" राम ने हनुमान, लक्ष्मण, जाम्बवान आदि को सेनासहित निकुंभिला पहुँचकर उस पापत्मा के मारने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही यूथपति निकुंभिला चैत्य में जा पहुँचे। इन्द्रजित् को सेना पर प्रहार आरंभ कर दिया। घमासान लड़ाई होने लगी। इन्द्रजित् अपनी सेना को शत्रुओं से पस्त देखकर यज्ञ को अधूरा छोड़ कर ही उठ खड़ा हुआ। वह अपने तय्यार किये हुए रथपर चढ़कर युद्ध में प्रवृत हो गया। रथपर बैठते ही उसकी दृष्टि

हनुमान पर पड़ी। उसने सारथी से कहा, "मेरा रथ हनुमान के पास ले चलो, क्योंकि इसको छोड़ देने से यह मेरी सेना को नष्ट कर देगा।" आज्ञा पातेही सारथी ने रथ को हनुमान के आगे ला खड़ा किया। मेघनाद ने आते ही वाण, खड्ग, पट्टिश और कुल्हाड़े वगैर: अस्त्र शस्त्र हनुमान पर चलाये। यह देख क्रुद्ध हो हनुमान ने कहा—"नीच! यदि तू शूर है तो आ मेरे साथ द्वन्द्व-युद्ध कर। आज तू मुझसे लड़कर जीता घर को नहीं जाने पावेगा।" हनुमान के ये वचन सुनकर इन्द्रजित् ने धनुष वाण चढ़ाया। यह देखकर लक्ष्मण और विभीषण वहाँ आ पहुँचे और उससे घोर संग्राम करने लगे। वह पापी लक्ष्मण के द्वारा धराशायी हुआ।

अहिरावण-वध

रावण के सभी नामी-गिरामी बड़े-बड़े योद्धा काम आये। वह बहुत घबरा गया और उसे अपनी हार नजर आने लगी। वह अपने इष्ट देव शंकर का ध्यान करता हुआ प्रार्थना करने लगा इसी बीच में उसे पाताललोक-वासी अहिरावण की याद आई। उसने उसे बुलाकर सूर्पनखा की नाक कटने से लगाकर अपने सब योद्धाओं के मरने तक की कथा कही। इन्द्रजित् जैसे वीर पुत्र के मरण की बात कहकर वह फूट फूटकर रोने लगा।

रावण की यह दशा देखकर अहिरावण ने कहा—"आप निश्चित रहिये मैं विभीषण का रूप बनाकर आज रात को रामचन्द्र की सेना में जाऊँगा और राम-लक्ष्मण को चुराकर पातालवासिनी अपनी कुलदेवी को भेंट चढ़ा दूँगा"। यह तदबीर सुनकर रावण का दुःख हल्का हुआ।

अहिरावण ने विभीषण का रूप बना राम-दल में प्रवेश किया। मुख्य द्वार पर हनुमान जागते हुए पहरा दे रहे थे। विभीषण जानकर हनुमान ने जाने दिया और वह सेना में पहुँचकर मोहन क्रिया द्वारा सबको अचेत कर राम-लक्ष्मण को अपने देश में ले गया कुछ ही देर बाद जब लोगों ने राम-लक्ष्मण का आसन सूना पाया तो सेना में उनकी ढूँढ मच गई। परन्तु उनका पता कहीं भी न चला। तब हनुमान ने कहा—"रात को मैंने विभीषण के रूप में सेना में प्रवेश करते एक व्यक्ति को देखा था मैंने विभीषण जानकर उसे अन्दर जाने दिया था। किन्तु वह कोई छली राक्षस था, और मेरे विचार से वही राम-लक्ष्मण को चुरा ले गया है।"

हनुमान के मुख से ये वाक्य सुनते ही विभीषण बोला:—

"ठीक है, मैं समझ गया। वह पाताल लोकवासी अहिरावण था। उसके सिवाय कोई दूसरा मेरा रूप बनाही नहीं सकता। वह बड़ा ही मायावी है। उसे रावण ने भेजा होगा। अब जिसमें शक्ति हो वह पाताल देश में जाकर उस राक्षस को मार राम-लक्ष्मण को लावे।"

विभीषण के वचन सुन जाम्बवान ने हनुमान से कहाः—"पवन तनय! अब इस समय सिवाय तुम्हारे हमारी इस नाव को कोई पार नहीं लगा सकता। जाओ! तुम दोनों भाइयों को जैसे बने वैसे शीघ्र ही यहाँ ले आओ।" सुग्रीव बोला—"हनुमान! रामचन्द्र के विना सब काम बिगड़ता है। करे धरे काम पर पानी फिरता है। अब अकेला रावण ही बचा है। उसे मारकर सीता को प्राप्त करना मात्र बाकी है। जाओ, जल्दी जाओ! रामलक्ष्मण को शीघ्र लाओ! एक एक क्षण युग के समान बीत रहा है।" हनुमान ने कहा—"घबराओ मत! अपनी सेना को धीरज बँधाओ। तुम चिंता त्याग दो। मैं राम लक्ष्मण को जहाँ कहीं वे होंगे वहाँ से ले आऊँगा। हाँ, एक बात तुम लोग ध्यान में रखना कि—यदि अब काल भी तुम पर आक्रमण करे तो अपने प्राणों को बलि देकर उससे युद्ध करना, भाग मत जाना।"

ऐसा कहकर महावीर वहाँ से चल दिये। थोड़ी दूर जाकर उन्हें बोली सुनाई पड़ी। वे ठहर गये, सुनने लगे। कोई कह रही थी "मैं दौहद हूँ मुझे नर मांस खाने की इच्छा है। कहीं से भी लाइये। गर्भवती की इच्छा पूरी कीजिये।" उत्तर मिला—"अहिरावण राम-लक्ष्मण को चुरा कर ले गया है, वह अभी अपनी कुलदेवी के आगे उनकी बलि देगा। यदि हुआ तो वहाँ से उनका मांस किसी न किसी तरह तेरे लिये लाऊंगा।" इस बातचीत से हनुमान को पूरा पता लग गया। वे अहिरावण की पुरी में शीघ्र ही जा पहुँचे। द्वार पर मकरध्वज नामक महाबली योद्धा

पहरा दे रहा था। उसने कहा—"जानेवाले ठहर, बिना मुझसे पूछे अन्दर कैसे चला जा रहा है ?" हनुमान ठहर गये। बात ही बात में हनुमान और मकरध्वज में पिता पुत्र का नाता निकल आया *। हनुमान ने इससे राम-लक्ष्मण का पता पूछा तो उसने कहा—"मुझे पूरा पता तो नहीं है किन्तु सुना है कि अहि-रावण देवी के आगे यज्ञ कर रहा है और राम-लक्ष्मण का बलिदान करेगा। परन्तु मैं आपको अन्दर नहीं जाने दूँगा। क्योंकि जिसका मैं नमक खाता हूँ उसकी आज्ञा पालन करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य है।

हनुमान उसे धक्का मारकर चलने लगे किन्तु उसी क्षण मकरध्वज ने हनुमान के घूंसा जमाया। अब दोनों में मुष्ट-युद्धि आरम्भ हो गया। दोनों ही बलवान थे। हनुमान ने मौका पाते ही मकरध्वज को बाँधकर वहीं डाल दिया और अन्दर चले गये। हनुमान ने देवी के मण्डप में पहुँचकर अहिरावण को यज्ञ करते देखा। वे छोटा सा रूप बनाकर पुष्पों में छिपकर बैठे। जब देवी पर पुष्प चढ़ाये गये तब महावीर ने अपना भयङ्कर रूप प्रकट किया। देवी तो पाद-प्रहार से भूमि में समा गईं आप देवी की जगह मुख फैलाकर खड़े हो गये। राक्षसों ने देवी को प्रसन्न

---

* जब हनुमान् लंका जलाकर लौट रहे थे तब उनका पसीना किसी मछली ने ग्रहण कर लिया था। उससे यह मकरध्वज पैदा हुआ था। ऐसी कथा है।

—लेखक

जानकर अहिरावण की प्रशंसा की और विविध प्रकार के बाजे बजाकर हर्ष प्रकट करने लगे। जो कुछ अहिरावण ने मुँह में दिया हनुमान ने सब कुछ खा लिया। अपने कार्य को सिद्ध हुआ देखकर अहिरावण राम-लक्ष्मण को वहाँ ले आया। राक्षसों ने इनके वध के लिये विविध हथियार उठा लिये। वधिकों ने अहि-रावण की आज्ञानुसार तलवारें म्यानों से खींच लीं! अहिरावण ने रामलक्ष्मण से कहा—"दुष्टो! अब तुम अपना अंत समझो, जिसे याद करना हो याद कर लो।" यह सुनकर रामलक्ष्मण एक दूसरे का मुँह देखने लगे। राम ने मन ही मन हनुमान को याद किया। जब राक्षस मारने को आगे बढ़े तब देवी रूप हनुमान ने गर्जना की। राक्षस डर गये। हनुमान ने फिर एक और भयंकर गर्जना की। अब हनुनान ने अपने को प्रकट कर दिया और खिल-खिलाकर हँस पड़े। इन्हें देखते ही राक्षस भागने लगे। हनुमान ने उन्हें रोककर उन्हीं के हथियारों से उन्हें वहीं मंडप में समाप्त कर दिया। बाद में अहिरावण का सिर काटकर अग्नि-कुण्ड में डाल दिया और रामलक्ष्मण को कंधों पर बिठा लंका में आ पहुँचे। राम-दल में अपार हर्ष हुआ।

गिरि-शिखर उठा लाना

रावण ने जब गुप्तचरों द्वारा यह माल्रूम किया कि रामलक्ष्मण को हनुमान पाताल से ले आये और अहिरावण अपने सहायकों-

सहित देवी के यज्ञ-मंडप में बलिदान के बकरों की तरह नष्ट कर दिया गया, तो वह अत्यन्त दुखी हुआ। अब उसने स्वयं रणाङ्गण में जाकर युद्ध करने का निश्चय किया। तदनुसार एक बड़ी भारी सेना लेकर वह मैदान में आया और राम की सेना में प्रलय का दृश्य उत्पन्न कर दिया। राम ने आगे बढ़कर रावण से युद्ध किया धीरे-धीरे युद्ध ने भयंकरता धारण कर ली, रावण ने लक्ष्मण को मारने की इच्छा से उनपर एक अमोघ शक्ति फेंकी वह लक्ष्मण के आ लगी। लक्ष्मण मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े! राम ने लक्ष्मण के हृदय से शक्ति को निकालकर दो टुकड़े कर दिये। यह देख, रावण ने रामपर अगणित बाण चलाये। राम ने भी उत्तर में इतने बाण फेंके कि रावण घबराकर भाग निकला।

रावण के भाग जाने पर राम अपने भाई लक्ष्मण के पास आये जहाँ वे लोहू से लथपथ पड़े थे। लक्ष्मण की यह दशा देख राम ने सुषेण * के सामने विलाप किया। सुषेण ने राम को सान्त्वना देते हुए हनुमान से कहा—

"सौम्य! तुम शीघ्र ही महोदय पर्वत पर जाओ। वहाँ, उसके दक्षिण शिखर पर विशल्यकरणी, सौवर्ण्यकरणी, संजीवकरणी और संधानी नामक बूटियाँ हैं उन्हें शीघ्र ही ले आओ।" अमित पराक्रमी हनुमान महोदय पर्वत के उस शिखर पर पहुँचे

* "सुषेण" नामक व्यक्ति सुग्रीव के दल में ही था। यह औषध चिकित्सा सम्बन्धी खूब विद्वान् था।

—लेखक

और बूटियाँ पहिचान न सके। क्योंकि रात्रि का वक्त था। अँधेरे में कुछ स्पष्ट दिखाई नहीं देता था। लक्ष्मण की हालत चिंताजनक थी। देरी हो जाने से, अनिष्ट होना संभव था अतएव हनुमान ने पर्वत के शिखण्ड को ही उठाकर ले चलना निश्चय किया। हनुमान तीन वार पर्वत-शिखर को हिलाकर उसे उखाड़ लिया और फिर उठाकर शीघ्रतापूर्वक वहाँ ले आये जहाँ लक्ष्मण वानरों से घिरे मूर्च्छित दशा में पड़े हुए थे। वहाँ पहुँचकर महावीर ने कहा—

"सुषेण ! मैं रात में औषधियाँ पहिचान न सका अतएव यह पर्वत खण्ड ही उठाकर लाया हूँ अब आप इसमें से ढूँढकर महात्मा लक्ष्मण को सेवन करावें।"

सुषेण ने गिरि-शिखर में से बूटियाँ उखाड़ लीं और पीसकर लक्ष्मण को नसवार दी। जिससे लक्ष्मण थोड़ी ही देर में उठ बैठे राम ने हनुमान को हृदय से लगा अपने उपकार भरे वचनों में कहा—

"महावीर ! मैं तुम्हारा अत्यन्त आभारी हूँ। मैं तुम्हारा कौन कौन-सा ऋण चुका सकूँगा। जो कुछ भी आज मैं सफलता पा रहा हूँ उसका श्रेय तुम्हें ही है। मैं तुम्हारा उपकृत हूँ, आजन्म ऋणी हूँ।" हनुमान ने कहा—

"स्वामिन् ! इस प्रकर न कहिये, मेरे चित्त को दुःख होता है मेरा शरीर तो आपकी सेवा ही के लिए उत्पन्न हुआ है। इसमें मेरे प्रति कृतज्ञता, उपकार, आभार और ऋण-प्रदर्शन करने की

आवश्यकता नहीं है। सेवक के लिये स्वामी को ऐसे वाक्य बोलना शोभा नहीं देता।"

हनुमान के इन वचनों को सुन सब लोगों ने "साधु साधु" कहकर महावीर की प्रशंसा की।

राम-सीता-मिलन

रावण के मर जानेपर रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण के साथ हनुमान आदि को लंका में भेजकर विभीषण को राज-तिलक करा दिया। पश्चात् हनुमान को बुलाकर राम ने कहा—

"सौम्य! लंकेश विभीषणजी से आज्ञा लेकर लंका में प्रवेश करो और सीता से हमारा कुशल कहो। पहिले सीता का कुशल-वृत्त पूछना, बाद में मेरा, लक्ष्मण का और सुग्रीव का कुशल कहो। रावण के मरने का एवम् विभीषण के राज-तिलक का वृत्तान्त सुनाओ और जो कुछ भी वह कहे वह हमसे आकर कहो।"

आज्ञा पाकर हनुमान अपनी परिचित अशोक-वाटिका में पहुँचे। वहाँ उन्होंने शृंगाररहित, दुर्बल शरीर, दीन, हीन, और मलीन वेश में राक्षसियों से घिरी सीता को देख सादर प्रणाम कर कहा—

"माता! शत्रुविजयी वीर, राम, लक्ष्मण, और सुग्रीव ने शत्रुओं को मार तुम्हें कुशल कहा है। विभीषण की सहायता

से राम- लक्ष्मण ने विश्वविजयी रावण को मारा है । तुम्हारे कारण ही धर्मात्मा राम ने युद्ध में विजयश्री प्राप्त की है। तुम जगद्वन्द्य हो। रावण का नाश हुआ। अतएव अब संताप को दूर करो। लंका अब श्रीरामजी के वश में है। रावण के घर रहती हुई अब मत घबराओ ! लंका का सब ऐश्वर्य विभीषण के अधिकार में है। वह देखो, तुम्हारे दर्शनों के लिये स्वयम् विभीषण आ रहे हैं ।"

यह हर्ष-सम्वाद सुनकर सीता गद्गद् कण्ठ हो गई । स्वर रुँध गया—मुख से एक शब्द न बोल सकी। यह देख हनुमान ने कहा—

"क्यों माता ? किस चिंता में पड़ गई ? मुझसे क्यों नहीं बोलतीं ?"

हनुमान के वचनों को सुन सीता ने बड़ी मुश्किल से गद्गद् वचनों में कहा—

"वत्स ! अपने भर्त्ता के विजय-सम्वाद की खुशी में मेरे मुख से शब्द नहीं निकलते। मैंने बहुत चाहा कि बोलूँ परंतु बोला नहीं गया। इस सुसम्वाद को लाने के उपलक्ष्य में मैं इस पृथ्वी पर किसी वस्तु को नहीं पाती जो देकर तुम्हारे इस कार्य का बदला चुकाऊँ। स्वर्ण, भूषण, वस्त्र तो क्या मैं त्रिलोकी का राज्य भी तुम्हें देकर संतोष नहीं पाऊंगी।"

हनुमान ने हाथ जोड़कर कहा—"माता धन्य हो ! तुम्हीं यह न कहोगी तो फिर कौन कहेगा। अस्तु, एक बात मैं आपसे

पूछना चाहता हूँ कि यदि आप आज्ञा दें तो इन निशाचरियों को जो रात दिन तुम्हें कष्ट दिया करती थीं, ज़रा मज़ा चखा दूँ।"

सीता ने कहा—"वीर! इसमें इनका क्या दोष है? ये पराधीन थीं। राजा की आज्ञानुसार इन्हें कार्य करना पड़ता था। इन पर व्यर्थ क्रोध करने से लाभ ही क्या है। अपने संचित पाप-कर्मों का फल मैंने भोगा है। ये निशाचरियाँ क्षमा के योग्य हैं। मैं इन्हें क्षमा करती हूँ। रावण के कहने ही से ये मुझे झिड़का करती थीं अब तो नहीं झिड़कतीं। ये क्षम्य हैं।" यह सुन हनुमान ने कहा—"देवि! अब आप मुझे अपना सन्देश दें जिसे लेकर मैं श्रीरामजी के पास जाऊँ।"

सीता ने कहा—"आंजेनेय! मेरी इच्छा है कि मैं अपने प्राणनाथ के दर्शन शीघ्र ही करूँ।"

हनुमान ने कहा—"माता! विजयश्री से चमकते हुए चन्द्र-समान मुखवाले रामजी को लक्ष्मणसहित तुम आज ही देखोगी। चिंता मत करो।"

ऐसा कहकर हनुमान वहाँ से चल दिये और श्रीरामजी के के पास आ कहने लगे—

"राघव! देवी मैथिली ने शोक भरे आँसुओं से आपका विजय सुन प्रसन्नता प्रकट की और अब वे आपके दर्शनों की की उत्कट लालसा कर रही हैं। उन्हें शीघ्र ही दर्शन दीजिये।"

यह सुनकर पास बैठे विभीषण को राम ने आज्ञा दी और वे लंका जाकर सीता को राम जी के पास लिवा लाये। राम ने सीता

को देखकर और सीता ने अपने पति को प्राप्त कर अपार हर्ष प्राप्त किया। हनुमान सुग्रीव आदि ने यह मधुरमिलन देखकर अपने नेत्रों को सफल किया।

अयोध्या में

लंका पर विजय पाकर श्रीराम पुष्पकयान में हनुमान आदि हितैषी मित्रोंसहित चढ़ शीघ्रही अयोध्या के निकट आ पहुँचे। अयोध्या को देखकर राम ने हनुमान से कहा—

"सौम्य ? तुम अयोध्या जाकर हमारे परिवार का कुशल वृत्तान्त मालूम करो। भरत को मेरी तरफ से कुशल कहकर, मेरा लक्ष्मण और सीतासहित लौटने का समाचार सुनाना। कहना कि शत्रुपर विजय पाकर राम मित्रोंसहित आ गये हैं।"

राम की आज्ञा पाते ही यशस्वी हनुमान अयोध्या में गया। वहाँ नन्दिग्राम में जाकर उन्होंने गेरुए वस्त्र धारण किये जटा-युक्त तापसवेष में महात्मा भरत को देखा। हनुमान ने हाथ जोड़-कर भरत की सेवा में निवेदन किया—

"जिन राम के लिये आप तापसवेष धारण किये चिंतातुर हैं—उन्होंने आपको कुशल कहा है। अब चिंता को छोड़कर प्रसन्न हों क्योंकि थोड़ी देर में आपको रामचन्द्रजी के लक्ष्मण और सीतासहित दर्शन होनेवाले हैं। दुष्टकर्मा रावण को मारकर अपने मित्रोंसहित श्रीराम आये हैं।"

इतना सुनकर भरत मारे हर्ष के पृथ्वी पर गिर पड़े। हर्ष और मोह के कारण चेतनाहीन हो गये। होश आने पर भरत ने कहा—"तुम देवता हो या मनुष्य ? मुझपर बड़ी कृपा की। इस प्रिय सम्वाद को सुनाने के बदले में तुम्हें क्या दूँ ? वर्षों बाद मैं अपने स्वामी का नाम-कीर्त्तन सुन रहा हूँ।"

ऐसा कहकर भरत ने हनुमान को प्रेम से दृढ़ आलिंगन किया और प्रीतिमय विपुल अश्रु-विंदुओं से हनुमान को भिंगो दिया। इतने ही में पुष्पक विमान वहाँ उतर आया। सब आपस में यथोचित विधि से मिले। नगर निवासियों से घिरे हुए श्रीरामजी ने रथारूढ हो लक्ष्मण और सीतासहित अयोध्या में प्रवेश किया। हनुमान सुग्रीव आदि भी राम के साथ साथ चलने लगे। भवन में पहुँचकर रामचन्द्र ने अपने मंत्रियों से सुग्रीव की मित्रता और हनुमान के पराक्रम की भूरि भूरि प्रशंसा की।

यथासमय वेदविधि एवम् कुल-प्रथा के अनुसार श्रीराम का राज्याभिषेक हुआ। श्रीरामने उत्तम मणियों से जटित चन्द्र-किरणों के तुल्य मोतियों का अत्युत्तम हार सीता को प्रेम भेंट में दिया। सीता उस हार को अपने कंठ से निकालकर इधर उधर देखने लगीं। श्रीरामजी सीताकी इच्छा को ताड़ गये, उन्होंने कहा—"सीते! यह हार उसे दो जिसे तुम अपना परम हितैषी समझती हो, जिस पर तुम अत्यंत प्रसन्न हो।" सुनते ही सीता ने मोतियों का वह हार पवनपुत्र को दे दिया। हनुमान उस मोतियों के हार को धारणकर इस प्रकार शोभित हुआ जैसे चन्द्र

किरणयुक्त गौर श्वेत बादलों से पर्वत शोभा पाता है। अभिषेक के पश्चात सुग्रीव जाम्बवान् और विभीषण आदि रामचन्द्र द्वारा संस्कृत हो अपने स्थानों को चले गये। हनुमान भी रामचन्द्र को अभिवादन कर किष्किंधा लौट गये ❀।

---

* "अध्यात्म रामायण" में यह कथा इस तरह लिखी है। "जब सीता ने हनुमान को मोतियों की माला दी तो उन्होंने एक एक मोती दाँतों से फोड़कर पृथ्वी पर डाल दिया। तब सुग्रीव ने कहा "हनुमान! आखिर तुम्हारा जाति-स्वभाव न छूटा।" हनुमान ने कहा—"मैं इसमें रामनाम ढूँढ़ता था परन्तु एक भी नहीं निकला!" सुग्रीव बोले "तुम्हारा शरीर भी तो कहाँ राम नामाङ्कित है?" यह सुन हनुमान ने अपने छाती की खाल चीरकर दिखाया जिसमें राम नाम अंकित था। सब देखनेवालों ने आश्चर्य किया। हनुमान की परम भक्ति देखकर रामने कहा—"हनुमान! मैं प्रसन्न हूँ जो तुम्हारी इच्छा हो सो माँगो। त्रिकाल में आपके लिये कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो तुम्हारे लिये अदेय हो।" हनुमान ने कहा—"स्वामिन! मेरी इच्छा है कि जबतक आ-का नाम नाम पृथ्वी पर रहे, तब तक मेरा यह शरीर भी रहे।" रामने "तथास्तु" कहा। इसी प्रकार साताने कहा—"तुम जहाँ कहीं रहोगे वहाँ मेरे आशीर्वाद से सब भोग प्राप्त होते रहेंगे।" इस प्रकार राम और सीता से इच्छित वरदान प्राप्तकर हनुमान तप करने के लिये हिमालय पर चले गये। इस प्रकार का कथा तुलसीकृत रामायण में भी लिखी है। इसपर हमने अपनी भूमिका में प्रकाश डाला है। —लेखक

रामजी के अश्वमेध में सहायता

रावण ब्राह्मण था। उसे श्रीरामजी ने मारा था इसलिये ब्रह्महत्या-निवारणार्थ उन्होंने महर्षि अगस्त्य तथा वसिष्ठजी की सम्मति लेकर अश्वमेध-यज्ञ करना निश्चय किया। यज्ञ होना निश्चित होते ही देशदेशान्तरों के राजा महाराजाओं को तथा अपने इष्टमित्रों को यज्ञ में आने के लिए निमंत्रणपत्र भेज दिये। विभीषण अपने मंत्रियों तथा सेनासहित कई दिन पहले आपहुँचे सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान, नलनील, द्विविद, मयंद, दधिमुख हनुमान आदि अपने योद्धाओं को साथ लिये अयोध्या आ गये। अन्यान्य इष्टमित्र भी यथासमय आये।

रामजी ने यज्ञीय घोड़े की पूजाकर उसके मस्तक पर एक पट्ट बाँधा जिसमें लिखा हुआ था।

"एक वीरा च कौशल्या तस्या पुत्रो रघुद्वह।
तेन रामेण मुक्तोसौ वाजिगृह्णात्विमं बली॥"

शत्रुघ्न को अश्वरक्षा के लिये सेनासहित नियुक्त, किया। विभीषण, और सुग्रीव अपनी सेना लिये शत्रुघ्न की सहायतार्थ चले। राम ने हनुमान से बुलाकर कहा—"आंजनेय ! तुमने समुद्र को पारकर सीता से मेरा संयोग कराया था। यह राज्य मैं तुम्हारे ही प्रताप से भोग रहा हूँ। हे भाई ! अब तुम सेनापति होकर इसके साथ जाओ और मेरे प्रिय भाई शत्रुघ्न की यथा-

विधि रक्षा करो। यदि शत्रुघ्न किसी बात को भूल जावें तो तुम इन्हें ज्ञान-शिक्षा देकर समझाते रहना।"

हनुमान ने सिर झुकाकर कहा—"प्रभो! आप निश्चिंत यज्ञ कीजिये। आपका मनोरथ पूर्ण होगा—ऐसा हमें पूर्ण विश्वास है। आप हमें विजय का आशीर्वाद दें।"

रामचन्द्रजी से आशीर्वाद प्राप्तकर, हनुमान, शत्रुघ्न, अंगद, सुग्रीव, नलनील, विभीषण, प्रतापाग्र, नीलरत्न, लक्ष्मीनिधि, रिपुताप, और उग्रासु आदि महारथियों को साथ लिए घोड़े के पीछे पीछे चलने लगे। इधर-उधर फिरता हुआ घोड़ा च्यवन ऋषि के आश्रम में पहुँचा। च्यवन ने रामचन्द्र के द्वारा अश्वमेध होना सुनकर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और वहाँ जाने के लिये चलपड़े। ऋषि को पैदल जाते देख हनुमान के मन में दया आई। उन्होंने शत्रुघ्न से कहा—"देखिये, ये महात्मा पैदल ही अयोध्या जा रहे हैं। अतिवृद्ध होने के कारण न जाने कब तक वहाँ पहुँच सकेंगे। यदि आज्ञा हो तो मैं इन्हें अयोध्या जल्दी ही पहुँचा आऊँ। आप तब तक यहीं मेरी मार्ग-प्रतीक्षा करें।"

शत्रुघ्न ने आज्ञा दे दी। हनुमान च्यवन को अपनी पीठ पर बिठाकर बड़े वेग से अयोध्य की ओर ले चले। शीघ्र ही अयोध्या में जा पहुँचे। वहाँ यज्ञ-भूमि में च्यवन को छोड़कर हनुमान वापस लौटे। इनके पहुँचने पर सेना ने च्यवनाश्रम से आगे प्रस्थान किया।

कई राजाओं ने हर्षपूर्वक राम की अधीनता स्वीकार की और

धनरत्न लेकर यज्ञ में पहुँचे। जिन राजाओं ने घोड़े को पकड़ा उनसे युद्ध करके घोड़ा छिनाया और उन्हें अपना आधीन बनाया। विद्युन्माली नामक राक्षस ने राम का घोड़ा पकड़ लिया और साथ ही रामचन्द्र की सेना पर अस्त्र शस्त्रों की वर्षा आरंभ कर दी। थोड़ी देर तक बड़ा ही भयंकर संग्राम हुआ। पुष्कल के बाणों से विद्युन्माली मारा गया। अपने भाई को मरा देख उग्रदन्त पुष्कल से लड़ने के लिये आया। और एक ऐसा घूँसा मारा कि पुष्कल मूर्च्छित हो रथ पर गिर पड़े।

पुष्कल को मूर्च्छित देख महावीर का रक्त क्रोध की गर्मी से उबलने लगा। उन्होंने ललकार कर कहा—

"अरे घोड़े के चोर! खड़ा रह, मैं तेरा काम अभी तमाम करे देता हूँ। ले सँभल।"

इतना कह, हनुमान उग्रदंत के रथ पर जा चढ़े और उसका विमान तोड़ ताड़कर मिट्टी में मिला दिया। फिर सेना के राक्षसों को गिन-गिनकर मारने लगे। किसी को घुमाकर पृथ्वी पर पटक मारा, किसी को घूँसा मारकर यमलो कका मेहमान बनाया और किसी को धक्का देकर ही प्राणहीन कर दिया। देखते देखते हनुमान ने राक्षस सेना को ठिकाने लगा दिया। अपनी सेना का संहार देख उग्रदन्त महावीर से बोलाः—

"ले सभल! तुझे अपने बल का बड़ा ही गर्व है। तूने मेरी सेना को क्या मारा है–तेरा दिमाग आस्मान से बातें करने लगा

है—परन्तु तू थोड़ी देर मेरे सामने ठहरेगा तो तुझे मालूम पड़ेगा कि किसी से पाला पड़ा था।"

ऐसा कहकर उस राक्षस ने एक भयानक त्रिशूल हनुमान पर फेंका। उस त्रिशूल को मार्ग में ही हनुमान ने पकड़ लिया तथा तोड़ मरोड़ कर फेंक दिया, और राक्षस को इतना व्याकुल कर दिया कि वह घबराकर भाग गया। तब शत्रुघ्न ने अर्द्धचन्द्र बाण चलाकर उसे धराशायी किया।

× × × ×

यहाँ से चलकर शत्रुघ्न सेनासहित आरण्यक मुनि के आश्रम में पहुँचे। आरण्यक ने शत्रुघ्न के सामने श्रीरामचन्द्रजी का जीवन चरित्र जन्म से लगाकर अश्वमेध की तय्यारी तक सब कह सुनाया और कहा—

"आज मैं सफल मनोरथ हुआ हूँ। आप लोगों के दर्शनों से मैं कृत कृत्य हो गया। अब मैं अयोध्या जाकर महाराजा श्री रामचन्द्रजी के दर्शन करूँगा। वहीं उनके परम भक्त महावीर हनुमान के दर्शन कर अपना जीवन सफल करूँगा। मुझे रामजी का प्रेमपात्र जानकर हनुमान मुझपर बड़े ही खुश होंगे।"

हनुमानजी ने ऋषि की बातें सुनीं तो वे हर्षपूर्वक उनके चरणों को स्पर्श करते हुए कहने लगे—"ब्रह्मन्! आपका सेवक यहाँ ही है! मुझे ही हनुमान कहते हैं। मुझे क्षमा करें मैं तो आपकी चरण-रज हूँ।" आरण्यक ने हनुमान को हृदय से लगा

लिया और बहुत देर तक अलग नहीं किया—प्रेम के कारण दोनों चित्रवत् खड़े दिखाई देने लगे। हनुमान ने कहा—

"तपोनिधे! ये रामजी के छोटे भाई शत्रुघ्न हैं। इन्होंने मधु पर पहुँचकर लवणासुर का काम तमाम किया है। ये आप को प्रणाम करते हैं।" इस प्रकार हनुमान ने सेना के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध वीरों का परिचय मुनि से कराया। रात भर वहीं रहे। प्रातःकाल एक पालकी में बिठाकर आरण्यक को तो अयोध्या भेज दिया और आप अपनी सेनासहित आगे बढ़े।

× × × × ×

घोड़ा दौड़ता हुआ रेवा नदी के किनारे पहुँचा। वह नदी में घुसा। थोड़ी दूर तो दिखाई पड़ा, परन्तु बाद में न जाने कहाँ गायब हो गया। उसकी खोज के लिये शत्रुघ्न,पुष्कल और हनुमान नदी में घुसे। नदी के नीचे उन्हें एक मनारम नगर दिखाई पड़ा जहाँ उन्होंने अपने घोड़े को भी बँधा पाया। पास ही में एक स्त्री बढ़िया वस्त्राभूषण पहिने पलङ्ग पर बैठी दिखाई दी। हनुमान आदि ने उसे प्रणाम किया तब वह कहने लगी—"तुम कौन हो? मेरे यहाँ किस लिये आये हो? यहाँ कोई भी नहीं आ सकता और यदि आ भी जावे तो फिर वापस नहीं जा सकता। यह घोड़ा किसका है?" हनुमान ने कहा—"हमलोग रामचन्द्रजी के सेवक हैं। यह उन्हीं का छोड़ा हुआ यज्ञीय अश्व है। तुम इस घोड़े को शीघ्र ही छोड़ दो। यदि तुम इसे छोड़ने में देरी करोगी तो फिर हमें अपना पुरुषार्थ प्रकट करना पड़ेगा।"

वह स्त्री कहने लगी—"हमने निर्भय होकर तुम्हारा यह घोड़ा पकड़ा है। तुम चाहो जितनी शक्ति लगाकर युद्ध करो हमसे जीतना असंभव है। यद्यपि हम स्त्रियाँ हैं और तुम पुरुष हो तथापि हमें जीत लेना तुम्हारी शक्ति से बाहर है। हम श्रीरामजी की भक्त हैं अतएव स्वामी के कार्य में विघ्न न हो इसी कारण हम घोड़ा लौटाये देती हैं। तुम रामचन्द्रजी से मेरा अपराध क्षमा करा देना।"

ऐसा कहकर उस स्त्री ने एक बाण दिया और कहा—"आगे चलकर तुम्हें वीरमणि नामक राजा मिलेगा, और वह तुम्हारा यह घोड़ा भी जरूर पकड़ेगा तब तुम उसे इस बाण से परास्त कर सकोगे।"

ऐसा कहकर उसने घोड़ा खोल दिया। और तीनों वीर अश्व सहित अपनी सेना में आ गये। घोड़ा देखकर सभी लोग प्रसन्न हुए। और वहाँ से आगे बढ़े।

× × ×

थोड़ी देर में घोड़ा देवपुर की सीमा में जा पहुँचा। वहाँ के राजा वीरमणि के पुत्र रुक्मांगद ने उस घोड़े को पकड़ कर बाँध लिया। दोनों ओर से युद्ध की तय्यारियाँ होने लगीं। नारद जी ने आकर शत्रुघ्न को वीरमणि के पुरुषार्थ का जिक्र किया और चक्रव्यूह बनाकर लड़ने की सम्मति दी। बड़ा ही घमासान युद्ध हुआ। रक्त की कीचड़ मच गई। अन्त में पुष्कल ने रुक्मांगद पर प्रहार कर उसे रथ से नीचे गिरा दिया। अपने

पुत्र को वीरमणि मूर्च्छित देखकर बड़ाही क्रुद्ध हुआ। वह सेना सहित आकर कहने लगा—"शत्रुघ्न और पुष्कल कहाँ है? आज वे मेरे बाणों से यमलोक का आतिथ्य ग्रहण करेंगे।" ऐसा कहते हुए वह भूखे शेर की तरह पुष्कल पर टूट पड़ा। पुष्कल के प्राण संकट में देखकर हनुमान उसकी सहायता के लिये वहाँ पहुँचे। हनुमान को आया देखकर पुष्कल ने कहा—

"मारुत आप ने क्यों कष्ट किया? यह तो थोड़ी सी सेना है, अभी मेरे हाथों मारी जायगी। आप के देखते देखते इस घमण्डी राजा को भी पृथ्वी पर सुलाऊँगा। अब शत्रुघ्नजी के पास लौट जाइये। यह छोटी सी सेना आप के लड़ने योग्य नहीं है, इसके लिये तो मैं ही काफी हूँ। पुष्कल की ऐसी बातें सुनकर हनुमान कहने लगे:—

"राज पुत्र! यह राजा बड़ा ही बलवान है। इसे शंकर का वरदान है। इसलिये तुम इससे युद्ध न करो क्योंकि तुम अभी बच्चे हो और यह प्रबल धनुर्धर योद्धा है।" पुष्कल ने कहा—मुझे रामजी की कृपा से किसी का भी डर नहीं है। मुझे पूरी आशा है कि मैं इसे जरूर हराऊँगा। आप मेरी चिन्ता छोड़कर वीरसिंधु से जाकर युद्ध कीजिये।"

हनुमान यहाँ से हट गये और वीरमणि के भाई वीरसिंधु के पास पहुँचकर बोले—"रे अभिमानी! अब तू मुझे अपना काल समझकर युद्ध के लिये तय्यार हो जा। देख, कहीं भाग

मत जाना ! मैं तेरी सेना को अभी देखते देखते ठिकाने लगाये देता हूँ ।"

यह सुनते ही वीरसिंधु ने अपने धनुष पर जा चढ़ाई और वर्षा की बूँदों की भाँति बाणों की झड़ी बाँध दी। बाणों के लगने से हनुमान का शरीर लोहू लुहान हो गया। हनुमान को क्रोध आया और दौड़कर उसकी छाती में इतने जोर का मुक्का मारा कि उसके हाथ से धनुष छूट गया और वह अचेत हो पृथ्वीपर गिर गया। वीरसिंधु को पड़ा देख शुभांगद और रुक्मांगद बाण-वृष्टि करते हुए हनुमान के पास आ पहुँचे। हनुमान ने उठाकर उन दोनों भाइयों को पृथ्वीपर पटक मारा। दोनों मूर्च्छित हो गये—और उनके शरीर खून से भींग गये। उधर योद्धाओं ने वीरमणि की सेना में प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। विजय श्रीरामचन्द्रजी को प्राप्त हुई, और वीरमणि को हार हुई।

इसी बीच वीरमणि की सहायता को कैलासपति शंकर आगये। युद्धने भयंकर रूप धारण किया। दोनों सेनाओं को लड़ते लड़ते ११ दिन होगये किन्तु हार किसी ने भी नहीं खाई। तब शंकर ने क्रुद्ध हो शत्रुघ्न के हृदय में एक उग्रबाण मारा, उसके लगते ही शत्रुघ्न मूर्च्छित हो गये। और दूसरा बाण चलाकर पुष्कल को भी बेहोश कर दिया। यह देखकर गर्जना करते हुए हनुमान, शंकर के पास आकर कहने लगे—"तुमने अधर्म युद्ध कर पुष्कल को हराया है। कहाँ यह बालक पुष्कल और कहाँ तुम्हारे प्रबल गण! मैंने सुना था कि तुम रामभक्त हो,

परन्तु आज देख लिया कि तुम्हारा राम भक्त बनने का कोरा ढोंग ही था। तुम्हारा, ज्ञान, बुद्धि, इष्ट और विचार सब इस युद्ध में नष्ट हो गये। तुमने शत्रुघ्न को मूर्छित किया है। निस्संदेह तुम रामचन्द्रजी के विरुद्ध हो।"

शंकर ने कहा—"तुम सच कहते हो। रामचन्द्रजी मेरे स्वामी हैं, मैं उनका सेवक हूँ। उनके घोड़े को पकड़ने पर ही यह सब झगड़ा खड़ा हुआ है। इधर वीर शिरोमणि मेरा भक्त है। उसके लिये लड़ना मुझे अनिवार्य्य हो गया। युद्ध धर्म के अनुसार मैंने शत्रुघ्न को हराया है। मैं मानता हूँ कि यह मैंने बुरा किया। मुझे आशा है कि रामजी मेरी विवशता जानकर मुझे अवश्य ही क्षमा करेंगे क्योंकि वे अत्यंत कृपालु हैं।"

शिवजी तो इस तरह कह ही रहे थे कि, हनुमान ने क्रोधपूर्वक एक शिला महादेवजी के रथ पर पटक दी। उसकी चोट से सारथी मर गया। घोड़े मर गये, रथ-ध्वज टूट गया। दोनों में युद्ध शुरू हुआ। शिवजी दूसरे रथ में बैठकर युद्ध करने लगे। हनुमान ने एक बड़ी शिला उठाकर फिर रथ पर पटक दी। यह पत्थर शिवजी के हृदय में बड़े जोर से लगा। शिवजी की क्रोधाग्नि भभक उठी, उन्होंने एक भयंकर त्रिशूल हनुमान पर चलाया। हनुमान ने उस आते हुए त्रिशूल को पकड़ कर तोड़ डाला। दोनों में कई दिनों तक युद्ध होता रहा। अन्त में हनुमानजी की मार से शिवजी घबरा गये, उनसे कुछ भी करते धरते नहीं बना। तब हनुमानजी से बोलेः—

"आप रामचन्द्रजी के अनन्य सेवक हैं। मैंने आज अच्छी तरह तुम्हारा पराक्रम देख लिया। तुम बड़े वीर हो। मैं आज तक ऐसा प्रसन्न किसी से भी नहीं हुआ था जैसा आज तुम्हारी वीरता से संतुष्ट हुआ हूँ। तुम जो चाहो सो माँगो, मैं सहर्ष देने को तय्यार हूँ।"

हनुमान ने कहा—"आप से मैं कोई वस्तु नहीं चाहता। श्रीराम की कृपा से मुझे सब पदार्थ सुलभ हैं। मैं तो आप से यही चाहता हूँ कि जब तक मैं पहाड़ पर जाकर शत्रुघ्न आदि की मूर्च्छा हटाने के लिये दवा न ले आऊँ तब तक आप उनकी रक्षा करते रहें।"

शिवजी ने कहा—"आप निश्चित होकर जाइये, मैं आपकी सेना की सब प्रकार रक्षा करूँगा।"

हनुमानजी पर्वत पर पहुँचे और वहाँ संजीवनी बूटी ढूँढने लगे। हनुमान बूटी नहीं पहिचान सके, तब उन्होंने पर्वत को ही उठाकर ले जाना निश्चित किया। वे पहाड़ को उठाने लगे। उस पर्वत के चारों ओर देवता रहते थे—उनमें हलचल मच गई। वे सोचने लगे कि पहाड़ क्यों हिलता है? ऐसा सोचकर वे हनुमानजी के पास आये और युद्ध करने लगे। भयंकर युद्ध हुआ। अन्त में बृहस्पतिजी ने आकर देवताओं को समझाया और वे युद्ध से हट गये। देवताओं ने स्वयम् हनुमान को संजीवनी देकर वहाँ से आदरपूर्वक बिदा किया। हनुमान ने सेना में पहुँचकर संजीवनी की नसावर देकर सब को सचेत कर दिया। सेना के होश

में आते ही फिर भी भयंकर युद्ध छिड़ा। दोनों में से एक भी नहीं हारता था। तब वहाँ श्रीरामचन्द्रजी पधारे और युद्ध बन्द हो गया।

× × ×

यहाँ से चलकर घोड़ा कुण्डलपुर राज्य में पहुँचा। वहाँ के राजा का नाम सुरथ था। सुरथ बड़ा ही साधु स्वभाव था। उसने रामचन्द्रजी का घोड़ा देखकर इस इच्छा से उसे पकड़ लिया कि, जब हम घोड़ा नहीं देंगे और उनकी सेना द्वारा परास्त नहीं हो सकेंगे तो श्रीरामचन्द्रजी स्वयं पधारेंगे, जिससे मैं उनके दर्शन कर चिरभिलषित इच्छा पूर्ण कर सकूँगा। सुरथ ने घोड़ा बाँध लिया। दोनों ओर से युद्ध की तय्यारियाँ होने लगीं, सुरथ की फौज मैदान में आ गई। युद्ध छिड़ गया। सुरथ का पुत्र चम्पक पुष्कल से युद्ध करने लगा। चम्पक के प्रहार से पुष्कल मूर्छित हो गया, तब चम्पक उसे अपने रथ में डाल कर नगर को ले चला। जब हनुमानजी को मालूम हुआ तो वे चम्पक को पकड़ने की इच्छा से उसके पीछे दौड़े। चम्पक ने इन्हें आता देखकर अपार बाण वृष्टि आरंभ कर दी। परंतु हनुमान ने उसके सब बाण व्यर्थ कर दिये। हनुमान ने एक वृक्ष उठाया और चम्पक पर फेंका। चम्पक एक उत्तम योद्धा था उसने बाणों से उस वृक्ष खंड को मार्ग में ही व्यर्थ कर दिया। अन्त में दोनों मल्ल युद्ध करने लगे। लड़ते लड़ते जब बहुत देर हो गई तब हनूमान ने चम्पक की एक टाँग पकड़कर खूब घुमाया और पृथ्वी पर पटक मारा—वह मूर्च्छित हो गया। उसके मूर्च्छित होते ही

उसकी सेना भाग छूटी और हनुमान ने पुष्कल को प्राप्त कर लिया।

अपने पुत्र को मूर्छित देख चम्पक का पिता सुरथ हनुमानजी के सामने युद्धार्थ आया और कहने लगा:—

"पवनात्मज ! तुम बड़े ही वलवान हो। लंका में तुमने अपनी शक्ति का अच्छा परिचय दिया था। तुम राम के सच्चे भक्त हो। मेरे पुत्र को तुमने मूर्छित किया है, इसलिये अब आओ मेरे साथ युद्ध करके अपना पुरुषार्थ दिखाओ। मैं देखता हूँ तुम कितने वीर हो!"

हनुमानजी ने कहा—मैं अपने स्वामी के प्रताप से हमेशा निर्भय हूँ। तुम मुझे बाँध लो न ? अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में अब विलम्ब क्यों कर रहे हो ? मैं भी देखता हूँ तुम में कितना बल है ?"

ऐसा सुनते ही सुरथ ने महावीर पर असंख्य वाण चलाये। उन्होंने वाणों को तोड़ दिये। अपने वाणोंको निष्फल देखकर सुरथ ने क्रोधपूर्वक एक शक्ति चलाई जिसके लगते ही हनुमान कुछ देर के लिये अचेत हो गए। मूर्च्छासे उठते ही उन्होंने सुरथ को रथ सहित उठाकर दे मारा। रथ चूर्ण हो गया,घोड़े मर गये। सुरथ नये रथ में बैठकर आया हनुमान ने उसे भी उठाकर पृथ्वी पर पटक मारा। इस प्रकार जब जब नये रथ पर चढ़कर आया महावीर ने उसे रथसहित उठा उठाकर कई बार फेंक दिया। जब सुरथने अपनी हार देखी तो उसने धनुष पर "रामबाण" चढ़ाया और हनुमान पर छोड़ने को तय्यार हुआ। यह देख

हनुमान हँसकर कहने लगे—"सुरथ ! मैं रामजी का दास हूँ। उनके नाम का बाण व्यर्थ न हो इसलिये अब तू मुझे पकड़ ले। अब मैं अपनी वीरता नहीं दिखाऊँगा। हाँ, यदि तू हाथमें राम-बाण न उठाता तो मैं फिर तुझे देखता कि तू मेरा क्या बिगाड़ सकता है। अब तू मुझे पकड़ ले। श्रीरामचन्द्रजी मुझे जरूर छुड़ा लेंगे।"

सुरथने महावीर को बाँध लिया। बाद में शत्रुघ्न और सुग्रीव आदि को मूर्च्छित कर दिया। अपनी सेना के हारने का समाचार सुन श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और भरत सहित पुष्पक विमान पर चढ़ वहाँ पहुँचे। सुरथ ने रामजी का स्वागत बड़े प्रेम से किया उन्हें भेट दी। आधीनता स्वीकार की और सब वीरों को छोड़ दिया।

× × ×

घोड़ा यहाँ से दौड़ता हुआ, वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में पहुँचा। वहाँ रामपत्नी-सीतादेवी के पुत्र लव और कुश ने घोड़ा पकड़ लिया और युद्ध के लिये रक्षक वीरों को ललकारा! ललकार सुनकर राम की सेना दोनों बालकों से भिड़गई। बालकों ने भी वह पुरुषार्थ दिखाया कि बड़े बड़े वीरों के होश उड़ गये। लव ने जब पुष्कल को मूर्च्छित कर दिया तो हनुमान उसे उठाकर शत्रुघ्न के पास ले गये। शत्रुघ्न ने बड़ा शोक किया और हनुमान को लव से लड़कर परास्त करने की आज्ञा दी। हनुमान आज्ञा पाते ही क्रोध भरे एक वृक्ष को उठाकर लव पर दौड़े और उसपर फेंक

मारा। परन्तु लव ने अपना हस्तलाघव प्रदर्शन करने में कमाल किया। उसने उस वृक्ष खण्ड को बाणों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया। हनुमान ने अपना प्रयत्न निष्फल देखकर एक समूल वृक्ष उखाड़ा और लव पर फेंका। उसे भी लव ने पूर्ववत् नष्ट कर दिया अब तो हनुमान का क्रोध और भी बढ़ गया—उन्होंने एक बड़ा भारी पत्थर उठाकर लव पर चलाया। वह भी व्यर्थ कर दिया। इस प्रकार कई बार हनुमान ने लव पर शिलाएँ फेंकी परन्तु लव ने सभी को नष्ट कर दिया।

अब हनुमान दाँत पीसते हुए लव के पास पहुँचे और उन्हें उठा लिया। ये उसे लेकर भागने लगे, परन्तु लवने हनुमान की छाती में ऐसे मुक्के जमाये कि व्याकुल होकर उसे छोड़ दिया। छूटते ही लवने प्रलय के वर्षणकारी मेघ के जल बिन्दुओं की भाँति हनुमान पर बाण चलाये। बाणों की चोटों से हनुमान घबरा उठे। उनके शरीर से खून बहने लगा। उन्होंने सोचा कि "यह है तो बालक है परन्तु है अजेय! इसे युद्ध में जीत लेना हँसी खेल नहीं है। क्या करूँ? युद्ध कैसे बन्द हो? अगर भागता हूँ तो लज्जा की बात है। अब एक मात्र यही उपाय है कि कपट मूर्च्छा करके रण-भूमि में दम साधे पड़ा रहूँ।

इसी बीच हनुमान के शरीर में लव का एक बाण आ लगा। वे कृत्रिम मूर्च्छा करके जमीन पर गिर पड़े। हनुमान की मूर्च्छा सुनकर शत्रुघ्न लव से लड़ने लगे। लव ने शत्रुघ्न को मूर्च्छित कर दिया। होश आने पर शत्रुघ्न ने लव को मूर्च्छित कर रथ में

डाल लिया और अयोध्या ले चले। इसी समय वहाँ कुश आ पहुँचा और उनका सामना किया। भयंकर युद्ध होने लगा। देखते ही देखते दोनों भाइयों ने समस्त राम-दल वहीं धराशायी कर दिया मूर्च्छित शत्रुघ्न का मुकुट कुश ने और पुष्कल का मुकुट लव ने अपने मस्तक पर रख लिया और हनुमान तथा सुग्रीव को पकड़-कर अपनी माता श्री सीतादेवी के पास ले चले। मार्गमें हनुमान ने सुग्रीव से कहा—

"सुग्रीवजी! पहिले हमने लङ्का में जाकर सीताको बड़ी बहादुरी दिखाई थी। वहाँ की अशोक वाटिका को नष्टकर रावण के बड़े-बड़े बहादुर लड़के को मारा था और देखते देखते लंका को जला डाली थी। परन्तु आज सीता के विमुख होने से यह परिणाम निकला कि ये छोटे छोटे बच्चे हमें पकड़े लिये जाते हैं।"

सुग्रीव और हनुमान को लिये लवकुश अपनी माता के पास पहुँचे। सीता ने अपने पुत्रों को सकुशल लौटा देखकर छाती से लगा लिया। थोड़ी देर बाद जब उनकी दृष्टि हनुमान और सुग्रीव पर पड़ी तो उन्होंने आश्चर्य चकित हो पूछा—"ये तुम्हें कहाँ मिल गये? इन्हें तुम जल्दी छोड़ दो। इन्हीं वीर पुंगव हनुमानजी ने मुझे रावण के संकट से बचाया था। इन्हीं ने लंका जलाई थी। ये सुग्रीवजी बड़े भारी राजा हैं। इनका क्या अपराध है, जो तुमने इन्हें बाँधा है? छोड़ दो जल्दी छोड़ दो, मैं इन्हें अपने नेत्रों से बँधा हुआ नहीं देख सकती।"

लवकुश ने इन्हें छोड़ दिया। हनुमान ने सीता के चरणों का स्पर्श किया। इसके बाद दोनों भाइयों ने घोड़े का पट्ट पढ़कर उसे पकड़ना और युद्ध करना तथा शत्रुओं पर विजय पाना आदि सब बातें आद्यन्त कह सुनाईं। सुनते ही सीता घबरा गईं और बोलीं। "तुमने यह अच्छा नहीं किया। जाओ उन्हें घोड़ा लौटा दो अपने चाचा शत्रुघ्न से क्षमा माँगो। तुम्हारे पिता अश्व-मेध कर रहे हैं।" लवकुश ने कहा—"हम क्षत्रिय बालक हैं जिन्हें युद्ध में हराया उनसे क्षमा माँगना हम अपना अपमान समझते हैं।" अन्त में स्वयम् सीताजी रणभूमि में आईं और अपने पाति-व्रत से सब सेना को जीवित कर उन्हें घोड़ा लौटा दिया।"

× × ×

इस प्रकार घोड़ा सब देशों में घूमता हुआ अयोध्या को पहुँच गया। रामचन्द्रजी को बड़ी प्रसन्नता हुई। निर्विघ्न यज्ञ समाप्त हो गया। रामचन्द्र ने अपने वीरों का यथोचित सत्कार कर उन्हें पारतोषक दिया। बाहर के आये हुए, इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धवों की यथोचित पूजाकर उन्हें बिदा कर दिया। श्रीहनुमानजी कुछ दिन तक रामजी की सेवा में रहकर अपने स्थान को वापस लौट गये।

रामचन्द्रजी से युद्ध

शकुन्त नामक एक राजा एक दिन शिकार के लिये जंगल में

गया हुआ था। उस दिन उसे शिकार नहीं मिली और जंगल में भटकता हुआ ऋषियों के आश्रम में जा पहुँचा वहाँ सभी ऋषि एकत्र थे राजा ने सबों को प्रणाम किया किन्तु विश्वामित्र को प्रणाम नहीं किया। उसने विश्वामित्र को क्षत्रिय मानकर उन्हें प्रणाम करने में अपना अपमान समझा। यह बात विश्वामित्र ही को नहीं बलिक कई अन्य ऋषि मुनियों को भी बुरी लगी। विश्वामित्र अपना अपमान एक क्षत्रिय राजा द्वारा देख मारे क्रोध के झल्ला उठे उन्होंने मन ही मन अपने अपमान का बदला लेने का पक्का इरादा कर लिया। और विश्वामित्र सीधे अयोध्या में आकर श्रीराम के दरवार में गये। विश्वामित्र को सभा में आता देख रामचन्द्रजी ने सिंहासन से उठ उनका यथेष्ट सत्कार किया। पाद्य अर्घ्य के पश्चात् स्वर्ण सिंहासन पर बिठाकर उनके पधारने का कारण पूछा। विश्वामित्र ने कहा—

"राघव! पहिले मुझे यह वचन दो कि जो कुछ भी मैं चाहूँगा, मेरी वही इच्छा पूर्ण करनी होगी। मैं आज आप से गुरु-दक्षिणा लेने आया हूँ। मारीच, सुबाहु और ताड़का के वध के समय मैंने आपको विविध अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग सिखलाया था – अतएव मैं आपका गुरु हुआ। आज आप मुझे गुरु-दक्षिणा दीजिये।"

श्रीरामचन्द्रजी बोले—"महर्षे! मैं आपकी सेवा के लिये सर्वदा प्रस्तुत हूँ। आप जो कुछ भी आज्ञा देंगे मुझे शिरोधार्य होगी। कहिये, क्या आज्ञा है? मैं तय्यार हूँ।"

विश्वामित्रने कहा—"शकुन्त नामक एक अभिमानी क्षत्रिय ने मेरा अपमान किया है। ऋषि मुनियों के बीच में बैठे हुए मुझको उसने प्रणाम नहीं किया और सभी तपस्वियों को प्रणाम किया। जिन लोगों का तप मेरे तप से शतांश भी नहीं कहा जा सकता उन्हें तक भी उसने प्रणाम किया। किन्तु मेरे विषय में यह कहकर कि मैं क्षत्रिय को सिर नहीं झुकाता। यह ऋषि हो गया तो क्या? वास्तव में तो क्षत्रिय ही है न?" इत्यादि बातों से मेरा अपमान हुआ है, अतएव मैं आप की शरण आया हूँ आप उसे दण्ड दीजिये।"

श्रीराम बोले—"शकुन्त ने यह बड़ी असभ्यता की है। यह व्यवहार आर्योचित नहीं हुआ है। उसने आप का अपमान नहीं बल्कि मेरा अपमान किया है। आप निश्चित रहिये, वह अपने किये का फल पावेगा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि कल सूर्यास्त के पहिले उसका वध करूँगा। यदि ऐसा न करूँ तो मुझे गो-हत्या, ब्रह्म-हत्या, भ्रूण-हत्या और स्त्री-हत्या का पाप हो और स्वर्ग न पाऊँ।"

राम की प्रतिज्ञा सुन, विश्वामित्र परम संतुष्ट हुए और पुलकित हृदय से अपने आश्रम को लौट आये। शकुंत को जब इस प्रतिज्ञा का पता लगा तो वह अपनी रक्षा का उपाय करने लगा। योगात् उसे श्रीनारदजी मिल गये उसने अपना दुखड़ा नारदजी से रोया। नारदजी ने उसे धीरज बँधाया और उसे अपने साथ वहाँ ले गये जहाँ देवी अंजनी थीं। शकुन्त ने अंजनी के

चरणों में गिरकर अभय याचना की। स्त्रियाँ स्वभातः करुणा हृदया होती हैं उन्होंने शकुन्त के मस्तक पर हाथ रखकर उसे अभय किया। परन्तु पूछने पर जब यह मालूम हुआ कि यह श्रीरामजी का अपराधी है तो देवी अंजनी को अत्यंत दुःख हुआ। उसने सोचा कि मैंने स्वामि-सेवक युद्ध का बीज अपने हाथों आज बोया है। नारदजी वहाँ से चले गये और शकुन्त भी हर्ष मानता हुआ अपने घर आ गया।

प्रातः समय जब हनुमान अपनी माता के चरण छूने के लिये आये तो उन्हें कुछ उदास एवम् खिन्न मन पाया। माता की यह दशा देखकर हनुमान ने हाथ जोड़कर विनीत भाव से कहा—

"माता! आप आज उदास क्यों हैं? आप प्रसन्न हों जो कुछ भी आज्ञा देंगी मैं करूँगा—जिस प्रकार आप प्रसन्न होंगी वही करूँगा।"

हनुमान की प्रतिज्ञा सुन अंजनी ने सब बात कह सुनाई। कुछ देर के लिये हनुमान चिंतामग्न हो गये कुछ भी नहीं बोले थोड़ी देर बाद उन्होंने एक ठण्डी साँस ली और बोले—

"माता! तूने जिसे अभय दिया है उसकी रक्षा के लिये मैं अवश्य ही दुष्ट-दल-दलन श्रीरामजी से युद्ध करूँगा। तू प्रसन्न हो।"

ऐसा कह, हनुमान ने बुलाकर शकुन्त को अपने आश्रम में ले लिया। श्रीरामचन्द्रजी दूसरे ही दिन प्रातःकाल शकुन्त के राज्य में पुष्पक विमानारूढ हो आये परन्तु वहाँ उसे न पाकर बड़ी चिंता करने लगे। इतने ही में श्रीनारदजी ने आकर उसके

हनुमान की शरण में जाने का सम्वाद सुनाया। श्रीराम हनुमानजी के स्थान को सेना-सहित चल पड़े। वहाँ शकुन्त को हनुमान द्वारा रक्षित देख राम ने हनुमान से कहा—

"महाबाहो! शकुन्त विश्वामित्रजी का अपराधी है और मैं इसे आज सूर्यास्त के पूर्व मारने की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ, तुम इसे छोड़ दो।"

महावीर ने श्रीरामजी के चरणों को छूकर कहा—

"स्वामिन्! मुझे मालूम है कि यह महाराज का अपराधी है परन्तु यह माता अंजनी के शरणागत हुआ और वे इसे अभय वर दे चुकी हैं अतएव मैं इसकी रक्षा के लिये विवश हूँ। मुझे क्षमा कीजिये, मैं इसे छोड़ने में परतन्त्र हूँ।"

हनुमानजी का उत्तर पाकर श्रीरामजी युद्ध के लिये तय्यार हो गये। हनुमान भी पर्वत खण्ड, शिलाएँ और वृक्ष आदि लेकर आक्रमण के लिये तय्यार हो गये। युद्ध आरंभ हो गया। हनुमान रामचन्द्रजी के योद्धाओं को बुरी तरह मारने लगे। उन्होंने तीन बार श्रीराम की सेना को अयोध्या पुरी में फेंक दिया। रामचन्द्र जी ने हनुमान को बाणों से ढाँक दिया। हनुमान बाणों को तोड़ मरोड़कर उनमें से ऐसे प्रकट हुए जैसे तृण-वन में से सिंह निकलता हुआ शोभा पाता है।

स्वामी-सेवक का युद्ध देखने की इच्छा से वहाँ, शंकर, ब्रह्मा, इन्द्र आदि देवता भी उपस्थित थे। वसिष्ठ, विश्वामित्र, वाल्मीकि भरद्वाज, आदि अनेक ऋषि आ पहुँचे थे।

हनुमान और रामजी का युद्ध बड़ा ही भनायक था। देवता और ऋषि मुनि इस बात का अनुमान भी नहीं लगा सकते थे कि विजय लक्ष्मी किसके गले में वैजयन्ती पहिनावेगी। लड़ते लड़ते सूर्यास्त हो गया, परन्तु विजयश्री मुस्कुराती ही रही। उसने किसी को भी जयमाल नहीं पहिनाई। श्रीराम ने अपना प्रण-भंग समझा और स्वयम् चलकर महावीर के पास पहुँचे और बोले—

"आंजनेय! शान्त होओ। सूर्यास्त हो गया। तुम्हारा प्रण पूर्ण हुआ।"

हनुमान ने उनके चरणों का स्पर्शकर अपने अपराधों की क्षमा माँगी। इसी बीच शंकर, ब्रह्मा, नारद, वसिष्ठ आदि ऋषियों ने बीच में पड़कर शकुन्त को समझा दिया। उसने विश्वामित्र को प्रणामकर अपने अपराधों की क्षमा चाही। विश्वामित्र ने उसे क्षमा कर दिया इस प्रकार यह झगड़ा निपटा।

द्वारका में रामदर्शन

जब श्रीरामचन्द्रजी ने अपने धाम जाने की तैयारी की तब उन्होंने हनुमान से कहा कि—"मैं तुम्हें कृष्णावतार के समय रामरूप से दर्शन दूँगा। तुम द्वारका में आना।"

एक दिन हनुमानजी के पास देवर्षि नारद आये और उन्होंने श्रीराम की प्रतिज्ञा की याद दिलाते हुए कहा—

"समीरात्मज ! कृष्णावतार हो चुका है, अब चलिये द्वारका चलकर रामचन्द्रजी के दर्शन कीजिये ।"

नारदजी की बात सुनकर हनूमान उनके साथ हो लिये और देश देशान्तरों के तीर्थ भ्रमण करते हुए द्वारावती में आ पहुँचे । यहाँ इन्होंने श्रीबलरामजी के बाग में अपना मुकाम किया । भूख लगने पर वाटिका के वृक्षों के फल तोड़कर खाना आरंभ कर दिया। रखवालों ने जब उन्हें मना किया तो उन्हें पकड़कर मारा-पीटा । वे रक्षक अधमरे-से होकर बलरामजी के पास पहुँचे और अपनी सारी कथा कह सुनाई । सुनते ही बलरामजी एक बड़ी भारी यादव-सेना लिये हनुमान जी से लड़ने आ पहुँचे । हनुमान ने भी एक बड़ा सा वृक्ष उखाड़ लिया और बलरामजी की सेना को उसके प्रहार से चौपट करने लगे । हनुमान की मार के आगे यादवों के अस्त्र-शस्त्र व्यर्थ हो गये । वे सब लोग खेत छोड़ भागे ।

बलरामजी जब लौटकर पहुँचे तब नारदजी ने उन्हें फिर युद्ध के लिये तय्यार किया । परन्तु श्रीकृष्ण ने उन्हें रोक दिया । वहाँ गरुड़ उपस्थित था उसने कहा—"आप ठहरिये मैं परास्त कर अभी यहाँ लाता हूँ ।" कृष्णचन्द्रजी ने गरुड़ को रोका—समझाया परन्तु वह नहीं माना और वहाँ जा पहुँचा जहाँ हनुमान ठहरे हुए थे । जाते ही गरुड़ ने हनुमान को युद्धार्थी हो ललकारा । उसकी ललकार सुन हनुमान आगे बढ़े और आते ही इतने जोर का चाँटा मारा कि गरुड़ के तो होश उड़ गये । एक थप्पड़ खा-

कर ही गरुड़ ने वहाँ से भागने का इरादा किया परन्तु हनुमान ने उसे पकड़ लिया और समुद्र के किनारे ले जाकर उसे बार बार समुद्र के खारे जल में गोते लगा दिये। गरुड़ बेचारा तो अधमरा हो गया। उसने हनुमान को एक साधारण योद्धा समझा था—इसीलिये हिम्मत बाँधकर चला आया था। जब उसने अपने प्राण संकट में देखे तो उसने हनुमान से क्षमा-याचना की और अपना-सा मुहँ लिये बलरामजी के पास लौट आया।

नारद ने हनुमान के आने का कारण श्रीकृष्णजी से कहा। तब श्रीकृष्णजी ने गरुड़ से कहा—"तुम जाकर हनुमानजी से कहो कि तुम्हें श्री रामचन्द्रजी ने बुलाया है।" जैसे तैसे हिम्मत बाँधकर घबराता हुआ गरुड़ महावीरजी की सेवा में आया और श्रीकृष्णजी का संदेश कह सुनाया। हनुमानजी ने गरुड़ को हृदय से लगा लिया और उसके साथ श्रीकृष्णजी के राजमहलों में आये। वहाँ पहुँचकर हनुमानजी ने श्रीरामचन्द्रजी को सीता लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नसहित वहाँ देखा। हनूमान ने दौड़कर अपने स्वामी के चरणों को पकड़ लिया और प्रेमाश्रुओं से उनके चरणाम्बुजों को सींच दिया। श्रीरामजी को बहुत समय बाद देखकर हनुमानजी का मन नहीं भरा वे उनके चरणों से लिपट गये, छोड़ते नहीं थे। तब रामरूप कृष्ण ने कहा—"हनूमान! अब जाओ। मैंने अपना दिया हुआ वचन पूर्ण किया। अधिक देर ठहरना अब ठीक नहीं, क्योंकि यह भेद किसी दूसरे पर नहीं प्रकट होना चाहिए।"

हनुमान ने उनके चरणों को अपने मस्तक से लगाया और अपरितृप्त मन से वहाँ से चलकर अपने आश्रम को लौट आये।

अर्जुन दर्प-दलन

द्वापर में पाण्डु-पुत्र अर्जुन बड़े भारी विख्यात धनुर्धर हुए हैं। एकबार उनसे भी हनुमान की भेंट हो गई। अर्जुन कार्य-वश एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचे जहाँ हनुमानजी उपस्थित थे। अर्जुन को देखते ही हनूमानजी ने रामचन्द्रजी का जयघोष किया। अर्जुन इस जय-ध्वनि को सुनकर मन ही मन क्रुद्ध गये। उन्होंने महावीर से कहा—"तुम श्रीकृष्णकी जय क्यों नहीं बोलते। वे रामचन्द्र से कहीं अधिक हैं।"

हनुमान ने गर्वपूर्वक कहा—"वीर! मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजी के समान दूसरा कोई भी नहीं हो सकता।" यह सुन अर्जुन ने मुँह बनाकर कहा:—

"न जाने, तुम रामचन्द्र की इतनी प्रशंसा क्यों करते हो? उन्होंने क्या किया है? सिर्फ यही न कि समुद्र पर पुल बाँधा। क्या इसी कार्य से तुम उन्हें संसार में अद्वितीय मान बैठे हो। परन्तु मैं आपको बतला देना चाहता हूँ कि यदि मुझे समुद्र पार सेनासहित जाने की जरूरत पड़ती तो वाणों का अच्छा मजबूत पुल बाँधता।" अर्जुन को ऐसी घमण्ड भरी बातें सुन हनुमान कहने लगे:—

"परन्तु आपका बाँधा हुआ पुल काम नहीं देता, क्योंकि मुझ जैसे अठारह पद्म योद्धा उस पर से पार हुए हैं। इतने वीरों के आने-जाने के बाद भी आज तक वह ज्यों का त्यों बना हुआ है। आपका बनाया हुआ पुल तो मेरे अकेले ही के चलने से नष्ट हो जाता।"

अर्जुन ने कहा—"तो लीजिये मैं पुल बाँधता हूँ आप उस पर अपनी सारी शक्ति लगाकर उछलिये-कूदिये और तोड़कर दिखाइये।" ऐसा कहकर अर्जुन ने गाण्डीव उठाया और असंख्य वाण फेंककर जल के एक बड़े भाग पर पुल तय्यार कर दिया। और कहा—"अब आप इस पर चलिये-फिरिये और देखिये कितना दृढ़ है आप क्या, आप जैसे असंख्य वीर इस पर से सैकड़ों बार आ-जा सकते हैं।"

इतना सुनते ही हनुमान ने एक निकटस्थ पर्वत उठा लिया और पुल पर कूदे। कूदते ही पुल टूट गया। पुल को टूटा देखकर अर्जुन भौंचक्का-सा रह गया और दिल में बहुत ही शर्मिन्दा हुआ। अबकी बार अर्जुन ने कहा—"खैर, इस बार मैं फिर पुल बनाता हूँ यदि तुम उसे तोड़ दोगे तो मैं जीतेजी अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।"

महावीर ने कहा—"ठीक है, मैं भी प्रतिज्ञा करता हूँ कि, यदि मेरे द्वारा पुल न टूटा तो मैं भी जीवित चिता जलाकर उसमें अपने शरीर को भस्म कर दूँगा।"

दोनों की प्रतिज्ञा हो चुकने के बाद अर्जुन ने वाणों का फिर

एक उत्तम सुदृढ़ पुल निर्म्माण किया। इस प्रकार दोनों की प्रतिज्ञाओं को जानकर विष्णु को बड़ी ही चिंता हुई। उन्होंने सोचा कि अर्जुन के बनाये इस पुल पर हनुमान का पैर पड़ते ही यह चकनाचूर हो जावेगा और अर्जुन को अग्नि में अपना शरीर भस्म करना पड़ेगा। बड़ा अनर्थ हो जावेगा। दोनों ही मेरे हैं। मैं एक का भी अनिष्ट नहीं देखना चाहता। ऐसा सोचकर विष्णु ने कछुए का रूप धारण किया और उस बाणों से बने पुल के नीचे पहुँच गये।

पुल के तय्यार हो जाने पर, हनुमानजी पहिले ने की भाँति पुल पर दौड़ लगाई। बहुत कुछ कूदे और उछले भी। पुल को नष्ट कर देने के लिये हनुमान ने अपनी सारी शक्ति लगा दी परन्तु वह पुल नहीं टूटा। जब हनुमान थक गये तब पुल से नीचे पृथ्वी पर अर्जुन के पास आ गये। हनुमान को लज्जित देखकर अर्जुन ने दर्पयुक्त वचन बोलना आरंभ किया—

"आप तो पुल तोड़ते थे न ? क्या नहीं टूटा ? कूदे फाँदे भी बहुत, फिर क्या हुआ ? मैं एक बार फिर मौका देता हूँ जाइये फिर अपनी ताकत आजमाइये।"

हनुमान ने कहा—जो कुछ भी होना था सो हो चुका, मैं प्रतिज्ञा से भ्रष्ट हुआ हूँ। अभी चिता बनाकर उसमें अपने शरीर को भस्म करता हूँ।"

ऐसा कहकर हनुमान ने काष्ठ इकट्ठा किया और उसमें अग्नि लगा दी। हनुमान चिता में कूदकर शरीर भस्म किया ही चाहते थे कि एक ब्राह्मण ने आकर कहा—

"ठहरो, ठहरो, यह क्या करते हो ? क्यों व्यर्थ ही अपना प्राण खोते हो ?"

हनुमान ने कहा—"मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सका अतएव अग्नि में अपना शरीर जला देने की दूसरी प्रतिज्ञा पूर्ण करता हूँ।"

ब्राह्मण ने कहा—"जरा ठहरो और मेरी पीठ को देखो।"

हनुमान ने तथा अर्जुन ने उस ब्राह्मण की पीठ को देखकर कहा—"अरे यह क्या ? लोहू लुहान है, असंख्य गहरे घाव हो गये हैं ? आपके शरीर के किसी दूसरे भाग पर तो एक भी घाव नहीं दिखाई देता और पीठ तो चलनी बन गई !! यह क्या हुआ ?"

ब्राह्मण ने कहा "ज़रा चल कर पानी को भी तो देख लो।" ब्राह्मण के कहने पर उन दोनों ने जल को देखा तो वह दूर दूर तक लाल हो रहा था। इस रहस्य को न तो महावीर ही जान सके और न अर्जुन ही समझ सके। तब विष्णु ने अपना असली रूप दिखाकर कहा—

"तुम दोनों शान्त हो। तुम दोनों की ऐसी भीषण प्रतिज्ञाएँ देखकर मुझे कच्छप रूप हो इन बाणों के पुल को अपनी पीठ पर सँभालना पड़ा। नहीं तो इन बाणों की क्या शक्ति थी जो हनुमान का भार सह लेते ! मेरे रक्त से सारा पानी लाल हो गया है। मैंने दोनों की प्रण-पूर्ति के लिये ही ऐसा किया है। क्योंकि तुम दोनों ही मेरे अनन्य भक्त हो। दोनों में-से एक का भी नाश मुझे अभीष्ट नहीं था। अब तुम दोनों अपने प्रण को पूर्ण समझो।

अर्जुन ! इस प्रकार अपने बल का अभिमान न किया करो।" ऐसा कह विष्णु चले गये। अर्जुन और हनुमान में मित्रता स्थापित हुई। जिसका उन्होंने "महाभारत के युद्ध" में परिचय दिया। यदि हनुमान न सँभालते तो कर्ण के बाणों से अर्जुन का रथ न जाने कहाँ जा गिरता।

भीमसेन से भेंट

यह द्वापर युग के अंतिम चरण की बात है। महान प्रतापी कौरव-पाण्डवों का जमाना था। दुर्योधन द्वारा कपट-द्यूत में हराये हुए पांडव अपनी प्रियतमा द्रौपदी के साथ वनवास में थे। अर्जुन इन्द्रलोक में शस्त्र प्राप्ति के लिये गये थे। पांडव इतस्ततः भ्रमण करते फिरते थे। जब ये लोग बदरी-क्षेत्र में पहुँचे तो एक दिन एक कमल पुष्प एक नदी में कहीं से बहकर आता हुआ द्रौपदी को दीख पड़ा। उसने ऐसे बहुत से कमल पुष्प लाने की प्रार्थना भीमसेन से की। महाबल पराक्रान्त भीम, जिस ओर से वह पुष्प आया था उसी ओर चल पड़े। वे गज, व्याघ्र आदि हिंस्र जंतुओं से संकुल वनों को पार करते हुए गन्धमादन पर्वत के कदलीवन में पहुँचे।

उस वन में हमारे चरित-नायक महावीर श्री हनुमानजी रहते थे। उन्होंने पशु-पक्षियों के भागने से, और कदली वृक्षों के टूट टूटकर गिरने से भीमसेन के आने का अनुमान कर लिया।

"ठहरो, ठहरो, यह क्या करते हो ? क्यों व्यर्थ ही अपना प्राण खोते हो ?"

हनुमान ने कहा—"मैं अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर सका अतएव अग्नि में अपना शरीर जला देने की दूसरी प्रतिज्ञा पूर्ण करता हूँ।"

ब्राह्मण ने कहा—"जरा ठहरो और मेरी पीठ को देखो।"

हनुमान ने तथा अर्जुन ने उस ब्राह्मण की पीठ को देखकर कहा—"अरे यह क्या ? लोहू लुहान है, असंख्य गहरे घाव हो गये हैं ? आपके शरीर के किसी दूसरे भाग पर तो एक भी घाव नहीं दिखाई देता और पीठ तो चलनी बन गई !! यह क्या हुआ ?"

ब्राह्मण ने कहा "ज़रा चल कर पानी को भी तो देख लो।" ब्राह्मण के कहने पर उन दोनों ने जल को देखा तो वह दूर दूर तक लाल हो रहा था। इस रहस्य को न तो महावीर ही जान सके और न अर्जुन ही समझ सके। तब विष्णु ने अपना असली रूप दिखाकर कहा—

"तुम दोनों शान्त हो। तुम दोनों की ऐसी भीषण प्रतिज्ञाएँ देखकर मुझे कच्छप रूप हो इन बाणों के पुल को अपनी पीठ पर सँभालना पड़ा। नहीं तो इन बाणों की क्या शक्ति थी जो हनुमान का भार सह लेते ! मेरे रक्त से सारा पानी लाल हो गया है। मैंने दोनों की प्रण-पूर्ति के लिये ही ऐसा किया है। क्योंकि तुम दोनों ही मेरे अनन्य भक्त हो। दोनों में-से एक का भी नाश मुझे अभीष्ट नहीं था। अब तुम दोनों अपने प्रण को पूर्ण समझो।

अर्जुन ! इस प्रकार अपने बल का अभिमान न किया करो।" ऐसा कह विष्णु चले गये। अर्जुन और हनुमान में मित्रता स्थापित हुई। जिसका उन्होंने "महाभारत के युद्ध" में परिचय दिया। यदि हनुमान न सँभालते तो कर्ण के बाणों से अर्जुन का रथ न जाने कहाँ जा गिरता।

भीमसेन से भेंट

यह द्वापर युग के अंतिम चरण की बात है। महान प्रतापी कौरव-पाण्डवों का जमाना था। दुर्योधन द्वारा कपट-द्यूत में हराये हुए पांडव अपनी प्रियतमा द्रौपदी के साथ वनवास में थे। अर्जुन इन्द्रलोक में शस्त्र प्राप्ति के लिये गये थे। पांडव इतस्ततः भ्रमण करते फिरते थे। जब ये लोग बदरी-क्षेत्र में पहुँचे तो एक दिन एक कमल पुष्प एक नदी में कहीं से बहकर आता हुआ द्रौपदी को दीख पड़ा। उसने ऐसे बहुत से कमल पुष्प लाने की प्रार्थना भीमसेन से की। महाबल पराक्रान्त भीम, जिस ओर से वह पुष्प आया था उसी ओर चल पड़े। वे गज, व्याघ्र आदि हिंस्र जंतुओं से संकुल वनों को पार करते हुए गन्धमादन पर्वत के कदलीवन में पहुँचे।

उस वन में हमारे चरित-नायक महावीर श्री हनुमानजी रहते थे। उन्होंने पशु-पक्षियों के भागने से, और कदली वृक्षों के टूट टूटकर गिरने से भीमसेन के आने का अनुमान कर लिया।

उन्होंने भीमसेन के जाने का जो मार्ग था उसे रोक लिया और वहीं बैठ गये। इस प्रकार राह रोककर पड़ जाने में भीमसेन का हित देखकर हनुमान वहाँ बैठकर जमुहाई लेने लगे और अपना लांगूल पटककर गिरि-कन्दराओं को निनादित करने लगे। वहाँ इन्द्र-वज्र के निर्घोष की भाँति शब्द होने लगा। वे क्रुद्ध वृषभ की फुंकार के समान जमुहाई का शब्द करने लगे।

जब भीमसेन के कानों में यह शब्द सुनाई पड़ा तो वे रोमांचित हो कदली वन में सतर्क घूमने लगे। आगे चलकर भीमसेन ने देखा कि एक पीवर शिलापर, बिजली की चमक-सा दुर्निरीक्ष्य, बिजली के समान पीतवर्ण, और बिजली की कड़क के समान शब्दकर्त्ता विशालकाय महापुरुष को बैठे देखा। रश्मिजाल माली उडपति की भाँति भास्वर और अशोक कुसुम राशि की तरह शोभमान थे। ऐसे देदीप्यमान शरीर द्वारा अनल की भाँति अर्चिष्मान्, अमित्रघाती, महाकाय अत्यंत बलराशि हनुमान स्वर्ग की राह रोककर उस कदलीवन में अवस्थित थे और मधुपिंगल नेत्रों द्वारा थोड़ा थोड़ा देखते भी जाते थे।

भीमसेन ने हनुमान के पास पहुँचकर सिंहनाद किया। हनुमान ने भीम की ओर देखकर मुस्कुराते हुए कहा—"मैं रोगग्रस्त हूँ। यहाँ आनन्दपूर्वक सो रहा था, तुमने मुझे क्यों जगाया, प्राणिमात्र के प्रति दया करना प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है, परन्तु तुमने अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं किया! तुम जैसे बुद्धिमान वचन, कर्म और मन से धर्मनाशक कार्य करने की कैसे हिम्मत

करते हैं ? मुझे तो मालूम होता है कि तुम अल्पबुद्धि हो, लड़कपन तुम्हारे स्वभाव में भरा हुआ है—शायद तुमने कभी ज्ञानी मनुष्यों की संगति भी नहीं की है ! खैर अब तुम यह कहो कि तुम कौन हो ? किसलिये इस मनुष्य-शून्य वन में आये हो ? और यह भी कहो कि तुम्हें जाना कहाँ है ? यहाँ से आगे चलकर अगम्य पर्वत है—उस पर चढ़ना बहुत ही दुस्साध्य है । यहाँ बिना सिद्धि प्राप्त किये जाने का प्रयत्न करना व्यर्थ है । यह देवलोक की राह है । मनुष्य जाति इस मार्ग से आने-जाने में असमर्थ है । मैं दयावश तुम्हें समझाता हूँ यदि तुम्हारा आगे जाने का विचार हो तो उसे त्याग दो । यदि मेरी बातें तुम्हें अच्छी मालूम हों तो ये कन्द मूल फल खाकर यहाँ से ही वापस लौट जाओ ।"

हनुमान की ये बातें सुन भीमसेन ने कहा—

"मैं क्षत्रियवर्ण चन्द्रवंशीय कुरु-कुलोद्भव कुंती के गर्भ से उत्पन्न, पवन के औरस से पैदा हुआ पाण्डु-पुत्र भीमसेन के नाम से प्रसिद्ध पुरुष तुमसे पूछता हूँ कि तुम कौन हो ?"

हनुमान ने कहा—"वीर ! मैं वानर-वंशी हूँ, मैं तुम्हें इच्छानुसार मार्ग नहीं देता । तुम लौट जाओ, इसी में भला है । व्यर्थ ही मृत्यु के ग्रास न बनो ।"

भीमसेन बोले—"कपिवर ! मैं विनाश होऊँ या न होऊँ ? इस विषय में मैं तुमसे कुछ भी नहीं सुनना चाहता । तुम्हें इससे क्या प्रयोजन ? तुम उठकर मुझे रास्ता दो, मतवाले होकर मेरे द्वारा कष्ट भोगने का काम न करो ।" हनुमान ने हँसकर कहा—"भाई

भीम ! मैं रोगग्रस्त हूँ, मुझमें अब उठने-बैठने की शक्ति नहीं रही इसलिये यदि तुम्हें जाना जरूरी ही है तो मुझे लाँघकर चले जाओ।"

भीमसेन ने कहा—"ज्ञानवेद्य निर्गुण परमात्मा देहमात्र में व्याप्त हैं। तुम्हें लाँघकर मैं परमात्मा की अवज्ञा नहीं करना चाहता। यदि मैंने आगम द्वारा उस परमात्मा को नहीं जाना होता तो मैं तुम्हें और इस पर्वत को, हनुमान के समुद्र लाँघने की भाँति कभी का लाँघ जाता।"

यह सुन हनूमान ने आश्चर्य से कुछ मुँह बनाते हुए पूछा—"कौन्तेय ! मैं तुमसे यह पूछना चाहता हूं कि जिसने समुद्र लाँघा वह हनुमान कौन था? यदि कुछ मालूम हो तो मुझे विस्तारपूर्वक कहो?"

भीमसेन ने कहा—"वे मेरे भाई, वानरों में श्रेष्ठ प्रशंसनीय गुणों से अलंकृत महाबलसम्पन्न हैं। रामायण उनके गुणों से भरी पड़ी है। उन्होंने राम की पत्नी के लिये सौ योजन समुद्र तैरा था। जैसे मेरे भाई हनुमान बल पराक्रम और युद्ध में अद्वितीय हैं उसी तरह मैं भी हूँ। अतएव मैं तुमसे कहे देता हूँ कि तुम मेरा मार्ग छोड़ दो, नहीं तो फिर पछताओगे। यदि तुमने मेरा कहना नहीं माना तो मैं तुम्हें यमालय भेज दूँगा।" हनुमान ने भीमसेन को बाहुवीर्य से दर्पित और बल द्वारा उन्मत्त समझकर मन ही मन हँसते हुए कहा—

"महाबाहो ! मुझपर कृपा करो, मैं वृद्ध हूँ और रोगी हूँ अतएव उठ नहीं सकता। तुम मेरी इस पुच्छ को मार्ग से हटाकर निकल जाओ।"

हनुमान की बात सुनते ही भीमसेन घमण्ड से आगे बढ़े और और बायें हाथ से हनुमान की पूँछ उठाने लगे। पूँछ ज़रा भी नहीं हिली तब उन्होंने इन्द्रधनुष के समान फैली हुई उस पूँछ को दोनों हाथों से उठाने की चेष्टा की। पूँछ टस से मस नहीं हुई। अन्त में भीमसेन ने हनुमान की पूँछ उठाने में अपना सारा बल खर्च कर दिया—सारा शरीर पसीने में सराबोर हो गया परन्तु पूँछ नहीं उठा सके। भीमसेन बड़े ही लज्जित हुए उन्होंने हनुमान के आगे हाथ जोड़ कहा—"आप मुझे क्षमा करें, मैंने आपको न जाने कैसे कैसे कड़े शब्द कह दिये हैं! मैं शिष्य की भाँति आपकी सेवा में उपस्थित होकर पूछता हूँ कि आप सिद्ध हैं, गन्धर्व है या गुह्यक हैं? यदि यह छिपाने योग्य न हो तो मुझे बताने की कृपा करें।"

भीमसेन को अपना वृत्तान्त जानने के लिये उत्सुक देखकर हनुमान ने अपनी जन्म से लगाकर अब तक की सब बातें विस्तारपूर्वक कह सुनाईं और अन्त में कहा—

"कुरुनन्दन! यह मार्ग देवताओं के चलने का है, इस पर मनुष्य नहीं चल सकते। इसी कारण मैंने आपका मार्ग रोका था क्योंकि आप मेरे भाई हैं अतएव आपको मैं कष्ट में देखना नहीं चाहता। जिन कमल पुष्पों की खोज में तुम यहाँ आये हो, वह सरोवर पास ही है—तुम वहाँ से इच्छित पुष्प ले सकते हो।

भीमसेन ने प्रणामकर कहा—"आज मेरा अहोभाग्य है कि मैंने आपका दर्शन पाया। अब मैं आपसे एक प्रार्थना और

करता हूँ कि समुद्र लंघन के समय का रूप मुझे बताइये। आप का वह रूप देखकर मुझे सन्तोष भी होगा और श्रद्धा भी होगी।

हनुमान बोले—"भीमसेन! मेरा वह रूप देखने की शक्ति तुममें अथवा किसी दूसरे में भी नहीं है। पहिले समय की अवस्था और प्रकार की थी अब वैसी नहीं है। सतयुग, त्रेता द्वापर में भिन्न भिन्न प्रकार का समय था। इस समय तो प्रध्वंसन का समय उपस्थित हुआ है। अब मेरा भी वह रूप नहीं। युग युग में जैसा भाव होता है सभी को युग के भावानुसार अनुगामी होना पड़ता है। देह बल प्रभाव कभी उत्पन्न होता है तो कभी विनाश हो जाता है। काल का अतिक्रमण करना नितान्त असंभव है। मुझ पर भी युग-धर्म का प्रभाव हुआ है, अतएव मैं अपना रूप दिखाने में असमर्थ हूँ।"

यह सुन भीमसेन ने युग धर्म के विषय में पूछा, तब हनुमान ने सतयुग, त्रेता, द्वापर, और कलियुग के धर्म का विस्तारपूर्वक वर्णन किया। युग-धर्म सुनने के पश्चात् भीमसेन ने कहा—"कपिराज! मैं आपका वह रूप देखे बिना यहाँ से कदापि नहीं जाऊँगा। आप मुझे अपने उस रूप का दर्शन देने की कृपा करें।

भीमसेन के इस प्रकार अनुरोध करने पर हनुमान ने अपना शरीर बढ़ाया। वे उस कदलीवन में द्वितीय पर्वत की भाँति दिखाई पड़ने लगे। अपने भाई हनुमान को इस प्रकार बढ़ता देखकर भीमसेन को बड़ी प्रसन्नता हुई और सुवर्ण पर्वत की भाँति प्रदीप्त शरीर को न देख सकने के कारण उन्होंने आँखें

मूँद लीं। तब हनुमान ने मुस्कुराकर भीमसेन से कहा—

"भीम मैं इससे भी अधिक बढ़ सकता हूँ। मैं इच्छानुसार अपने शरीर को घटा-बढ़ा भी सकता हूँ।"

भीमसेन ने आँखें मूँदे मूँदे ही कहा—"विभोः अब आप अपना शरीर छोटा कीजिये। इतना बड़ा भूधराकार शरीर देखने की मुझमें शक्ति नहीं है। आपका यह भयानक रूप देख मुझे तो अब यह आश्चर्य हो रहा है कि आपके होते हुए श्रीरामजी को रावण से क्यों लड़ना पड़ा था—क्योंकि आप अकेले ही रावणसहित लंकापुरी को नष्ट कर सकते थे।" हनुमान ने प्रेमपूर्वक कहा—"भारत! अवश्य मैं ससैन्य रावण को मारकर सीता को रामजी के पास ले जाने में समर्थ था परन्तु मेरे ऐसा करने से रघुनाथजी की कीर्ति लोप हो जाती इसीलिये मैंने ऐसा नहीं किया। भीमसेन! अब तुम यहाँ से लौट जाओ। तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो। सौगन्धिक पुष्प वन में जाने की यही राह है—इस मार्ग से आगे बढ़ने पर तुम्हें कुबेर का बागीचा दिखाई पड़ेगा। उस बाग की रक्षा राक्षस और यक्ष करते हैं अतएव तुम वहाँ जबरदस्ती न करना क्योंकि देवता मनुष्यों के लिये मान्य होते हैं। तुम वहाँ पहुँचकर धर्म को मत लाँघना।"

ऐसा कह हनुमान ने अपना आकार छोटा किया और भीमसेन को प्रेमपूर्वक छाती से लगाया। और कहने लगे—"अब यहाँ देव, गन्धर्व आदि के आने का समय है इसलिये तुम अपने स्थान को वापस लौट जाओ। तुमने दर्शन देकर मेरे नेत्रों

को तृप्त किया है । तुम भ्रातृभाव के रूप में मुझसे कुछ प्रेम पुरस्कार माँगो । यदि तुम चाहो तो मैं आज ही हस्तिनापुर पहुँचकर धार्त्तराष्टों को मार, दुर्योधन को बाँधकर तुम्हारे पास ला सकता हूँ । जैसी तुम्हारी इच्छा हो कहो, मैं करने को तय्यार हूँ ।"

भीमसेन ने हनुमान के मुँह से ऐसी बातें सुनकर प्रफुल्लान्तःकरण से धन्यवाद दिया और कहा—

"महाराज ! आपकी यह कृपा ही हमारे लिये पर्याप्त है । मैं आपसे यही चाहता हूँ कि आप सदैव मुझपर कृपा रखें । हम पाण्डव आज आपको प्राप्तकर सनाथ हुए हैं—आपकी कृपा से हमलोग शत्रुओं पर विजय पावेंगे ।"

हनुमान ने उनसे कहा—"मैं भ्रातृभाव के कारण तुम्हारा प्रियकार्य करूँगा । जब तुम रण-भूमि में शत्रुसेना को विलोड़ित कर सिंहनाद करोगे तब मैं अपने कलरव से तुम्हारे गर्जन को बढ़ाऊँगा और विजय का ध्वजस्थ हो शत्रुओं का प्राण-संहारक भयंकर गर्जन करूंगा । इससे तुम्हें शत्रुओं को परास्त करने में बहुत कुछ सहायता मिलेगी । अच्छा अब तुम जाओ, मैं भी जाता हूँ ।"

ऐसा कह हनुमान वहाँ से चल दिये । भीमसेन भी प्रणाम कर उनके बताये मार्ग पर चलने लगे ।

इस घटना के पश्चात् हनुमानजी की कोई भी ऐसी प्रामाणिक कथा नहीं मिलती जिसको यहाँ लिखा जा सके । श्रीहनुमानजी, चिरजीवी हैं परंतु इसके आगे उनकी जीवनी का कुछ पता नहीं लगता ।

शमिति

श्रीहनुमत्कवच

अथ

श्रीरामप्रोक्त हनुमत्कवचं

प्रारभ्यते

श्रीगणेशाय नमः ।। ॐ श्रीहनुमते नमः ।। एकदा सुखमासीनं शंकरं लोकशंकरम् । पप्रच्छ गिरिजा कांतं कर्पूरधवलं शिवम् ।। १ ।। पार्वत्युवाच ।। भगवन्देवदेवेश लोकनाथ जगद्गुरो ।। शोकाकुलानां लोकानां केन रक्षाभवेद्ध्रुवम् ।।२।। संग्रामे संकटे घोरे भूतप्रेतादिके भये ।। दुःख दावाग्नि-संतप्तचेतसां दुःखभागिनाम् ।। ३ ।। ईश्वर उवाच ।। शृणु देवि प्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया ।। ४ ।। विभीषणाय रामेण प्रेम्णा दत्तं च यत्पुरा । कवचं कपिनाथस्य वायुपुत्रस्य धीमतः । गुह्यं ते संप्रवक्ष्यामि विशेषाच्छृणु सुन्दरि ।।५।। ॐ अस्य श्रीहनुमत्कवच स्तोत्रमंत्रस्य श्रीरामचंद्र ऋषिः । अनुष्टुप्छंदः श्रीमहावीरो हनुमान् देवता । मारुतात्मज इतिबीजम् ।। ॐ अंजनीसूनुरिति शक्तिः । ॐ हैं ह्रां ह्रौं इति कवचम् । ॐ स्वाहा इति कीलकम् । लक्ष्मणप्राणदाता इति बीजम् । सकलकार्य सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः ।। अथन्यासः ।। ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्रूं मध्यमा

भ्यां नमः । ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः । ॐ ह्रांकनिष्ठिकाभ्यां नमः ।
ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यांनमः । ॐ अंजनीसूनवे हृदयाय नमः ॥
ॐ रुद्रमूर्तये शिरसे स्वाहा ॥ ॐ वायुसुताय शिखायै वषट् ॥
ॐ वज्रदेहाय कवचाय हुं ॥ ॐ रामदूताय नेत्रत्रयाय वौषट् ॥
ॐ ब्रह्मास्त्रनिवारणाय अस्त्राय फट् ॥ रामदूताय विद्महे कपिरा-
जायधीमहि ॥ तन्नोहनुमान् प्रचोदयात् ॐ हुँफट् इति दिग्बंधः ॥
ॐध्यायेद्बालदिवाकरद्युतिनिभं देवारिदर्पापहं देवेंद्रप्रमुखप्रशस्त-
यशसं देदीप्यमानं रुचा ॥ सुग्रीवादिसमस्तवानरयुतं सुव्यक्त-
तत्त्वप्रियं संरक्तारुणलोचनं पवनजं पीतांबरालंकृतम् ॥ १ ॥
उद्यन्मार्तंडकोटिप्रकटरुचियुतं चारुवीरासनस्थं मौंजीयज्ञोपवीता-
ऽरुणरुचिरशिखाशोभितं कुंडलांकम् ॥ भक्तानामिष्टदं तं प्रणत-
मुनिजनं वेदनादप्रमोदं ध्याये देवं विधेयं प्लवगकुलपतिं गोष्प
दीभूतवार्द्धिम् ॥ २ ॥ वज्रांगंपिंगकेशाढ्यंस्वर्णकुण्डलमंडितम् ।
नियुद्धकर्मकुशलं पारावारपराक्रमम् ॥ ३ ॥ वामहस्तेमहावृक्षं
दशास्यकरखण्डनम् ॥ उद्यद्दक्षिणदोर्दंडं हनुमन्तं विचिंतयेत्
॥ ४ ॥ स्फटिकाभं स्वर्णकांतिं द्विभुजं च कृतांजलिम् ॥ कुंडल-
द्वय संशोभिमुखांभोजं हरिं भजेत् ॥ ५ ॥ उद्यदादित्यसंकाश-
मुदारभुजविक्रमम् । कंदर्पकोटिलावण्यं सर्वविद्याविशारदम् ॥६
श्रीरामहृदयानंदं भक्तकल्पमहीरुहम् ॥ अभयं वरदं दोर्भ्यां कलये
मारुतात्मजम् ॥७॥ अपराजित नमस्तेऽस्तु नमस्ते रामपूजित ॥
प्रस्थानं च करिष्यामि सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥८॥ यो वारांनिधि-
मल्पपल्वलमिवोल्लंघ्यप्रतापान्वितो वैदेही घनशोकतापहरणो

वैकुंठतत्त्वप्रियः ॥ अक्षादूर्जितराक्षसेश्वरमहादर्पापहारी रणे ।
सोऽयं वानरपुंगवोऽवतु सदा युष्मान्समीरात्मजः ॥ ६ ॥ वज्रांगं
पिंगकेशं कनकमयलसत्कुंडलाक्रांत गंडं नानाविद्याभिनाथं कर-
तलविधृतं पूर्णकुंभं दृढं च ॥ भक्ताभीष्टाधिकारं विदधति च सदा
सर्वदा सुप्रसन्नं त्रैलोक्यत्राणकारं सकलभुवनगं रामदूतं नमामि
॥१०॥उद्यल्लांगूलकेशं प्रचलजलधरं भीममूर्तिं कपींद्रं वंदे रामां-
घ्रि पद्मभ्रमरपरिवृतं तत्त्वसारं प्रसन्नम् ॥ वज्रांगं वज्ररूपं कनक
मयलसत्कुण्डलाक्रांतगंडं दंभो लिस्तंभसारप्रहरणविकटं भूतर-
क्षोधिनाथम् ॥ ॥ ११ ॥ वामे करे वीरभयं वहंतं शैलं च दक्षेनि
जकंठलग्नम् ॥ दधानमासाद्य सुवर्णवर्णं भजेज्वलत्कुण्डलराम-
दूतम् ॥ १२ ॥ पद्मरागमणिकुंडलत्विषा पाटली कृतकपोलमंड-
लम् ॥ दिव्यदेहकदलीवनांतरे भावयामि पवमान नंदनम्
॥ १३ ॥ ईश्वर उवाच ॥ इतिवदतिविशेषाद्राघवो राक्षसेंद्रं
प्रमुदितवरचित्तो रावणस्यानुजोहि ॥ रघुवरवरदूतं पूजया-
मास भूयः स्तुतिभिरतिकृतार्थं स्वं परं मन्यमानः ॥ १४ ॥
वंदे विद्युद्वलयसुभगं स्वर्णयज्ञोपवीतं कर्णद्वन्द्वे कनकरुचिरे कुंडले
धारयंतम् । उच्चैर्हृष्यद्द्युमणिकिरणश्रेणिसंभावितांगं सत्कौपीनं
कपि वरवृतं कामरूपं कपीन्द्रम् ॥ १५ ॥ मनोजवं मारुततुल्यवेगं
जितेंद्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ॥ वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीराम-
दूतं सततं स्मरामि ॥ १६ ॥ ॐ नमो भगवते हृदयाय नमः ॥
ॐ आंजनेयाय शिरसे स्वाहा ॥ ॐ रुद्रमूर्तये शिखायै वषट् ॥ ॐ
रामदूताय कवचाय हुम् ॥ ॐ हनुमते नेत्रत्रयायवौषट् ॥ ॐ अग्नि

गर्भाय अस्त्रायफट् ।। ॐ नमो भगवते अंगुष्ठाभ्यांनमः ॐ आंजनेयाय तर्जनीभ्यां नमः ।। ॐ रुद्रमूर्तये मध्यमाभ्यां नमः ।। ॐ हनुमते कनिष्ठिकाभ्यांनमः ।। ॐ अग्निगर्भाय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।। अथ मंत्र उच्यते ।। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः ।। ॐ ह्रीं ह्रौं नमो—भगवते महाबलपराक्रमाय भूत—प्रेत—पिशाच—शाकिनी—डाकिनी—यक्षिणी—पूतना—मारी-महामारी—यक्ष—राक्षस-भैरव—वैताल—ग्रह—राक्षसादिकं क्षणेन हन हन भंजय २ मारय २ शिक्षय १ महामाहेश्वररुद्रावतार हुं फट् स्वाहा ।। ॐ नमोभगवते हनुमदाख्याय रुद्राय सर्वदुष्टजनमुखस्तंभनं कुरु कुरु ह्रां ह्रीं ह्रूं ठं ठं ठं फट् स्वाहा ।। ॐ नमो भगवते अंजनीगर्भसंभूताय राम लक्ष्मणानंदकाय कपिसैन्यप्रकाशनाय पर्वतोत्पाटनाय सुग्रीवसाधकरणोच्चाटनाय कुमारब्रह्मचारिणे गंभीर शब्दोदयाय ।। ॐ ह्रां ह्रीं ह्र सर्वदुष्टनिवारणाय स्वाहा ॐ नमोहनुमते सर्व ग्रहान्भूतभविष्यद्वर्तमानान्दूरस्थान् समीपस्थान् सर्वकाल दुष्टदुर्बुद्धीनुच्चाटयोच्चाटय परबलानि क्षोभय क्षोभय मम सर्वकार्यं साधय साधय हनुमते ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं फट् देहि ॐ शिवं ॐ सिद्धं ह्रां ह्रीं ह्रं ॐ स्वाहा ।। ॐ नमो हनुमते परकृतयंत्रमंत्रपराऽहंकारभूतप्रेतपिशाचपरदृष्टिसर्वविघ्नदुर्जनचेटकविद्यासर्वग्रहान्निवारय निवारय वध २ पच २ दल २ चिलु २ किलकिल सर्वकुयंत्राणिदुष्टवाचं फट् स्वाहा ।। ॐ नमो हनुमत पाहि पाहि एहि एहि सर्वग्रहभूतानांशाकिनीडाकिनीनांविषमदुष्टानां सर्वविषयानाकर्षया कर्षय मर्दय २ भेदय २ मृत्युमुत्पाटयोत्पाटय शोषय शोषयज्वल

ज्वल प्रज्वल प्रज्वल भूतमंडलं प्रेतमंडलं निरासय २ भूतज्वर प्रेतज्वर चातुर्थिकज्वर विषमज्वरमाहेश्वरज्वरान् छिंधि २ भिंधि २ अक्षिशूलवक्षः शूलशिरोभ्यंतरशूलगुल्मशूलपित्तशूलब्रह्मराक्षस कुलपरकुलनागकुलविषंनाशय २ निर्विषंकुरु २ फट् ॥ ॐ ह्रां सर्वदुष्टग्रहान्निवारय स्वाहा ॥ ॐ नमो हनुमतेपवनपुत्राय वैश्वानरमुखायहनहनानया दृष्टया पापदृष्टिं षंढदृष्टिं हन हन हनुमदाज्ञया स्फुर २ स्वाहा ॥ श्रीरामचंद्रउवाच ॥ हनुमान्पूर्वतः पातु दक्षिणेपवनात्मजः ॥ पातुप्रतीच्यां रक्षोघ्नः पातु सागरपारगः ॥ १ ॥ उदीच्यामूर्ध्वगःपातु केसरिप्रियनंदनः अधश्च विष्णुभक्तस्तु पातु मध्यं च पावनिः ॥ २ ॥ अवांतरदिशः पातुसीताशोक विनाशनः ॥ लंकाविदाहकः पातु सर्वापद्भ्यो निरंतरम् ॥ ३ ॥ सुग्रीवसचिवः पातु मस्तकं वायुनंदनः । ॥ भालं पातु महावीरो भ्रुवोर्मध्ये निरंतरम् ॥ ४ ॥ नेत्रे छायापहारीच पातु नः प्लवगेश्वरः कपोलौकर्णमूले तु पातु श्रीरामकिंकरः ॥ ५ ॥ नासाग्रमंजनीसूनुर्वक्त्रं पातु हरीश्वरः ॥ वाचं रुद्रप्रियः पातु जिह्वां पिंगललोचनः ॥ ६ ॥ पातु दंतान् फाल्गुनेष्टश्चिबुकं दैत्यप्राणहृत् ॥ पातु कंठं च दैत्यारिः स्कंधौ पातु सुरार्चितः ॥ ७ ॥ भुजौ पातु महातेजाः ॥ करौ च चरणायुधः ॥ नखान्नखायुधः पातुकुक्षिं पातु कपीश्वरः ॥८॥ वक्षो मुद्रापहारी च पातु पार्श्वे भुजायुधः ॥ लंकाविभंजनः पातु पृष्ठदेशे निरंतरम् ॥ ९ ॥ नाभिं च रामदूतस्तु कटिं पात्वनिलात्मजः ॥ गुह्यं पातु महाप्राज्ञः सक्थिनी च शिवप्रियः ॥ १० ॥ ऊरू च जानुनी पातु लंकाप्रासादभंजनः ॥

जंघे पातु महाबाहुर्गुल्फौ पातु महाबलः ॥ ११ ॥ अचलोद्धारकः पातु पादौ भास्करसन्निभः ॥ पादांते सर्वसत्त्वाढ्यः पातु पादांगुलीस्तथा ॥ १२ ॥ सर्वांगानि महाशूरः पातु रोमाणि चात्मवान् ॥ हनुमत्कवचं यस्तु पठेद्विद्वान्विचक्षणः ॥ १३ ॥ स एव पुरुषः श्रेष्ठो भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति ॥ त्रिकालमेककालं वा पठेन्मासत्रयं सदा ॥ १४ ॥ सर्वान्रिपून्क्षणं जित्वा स पुमाञ्छ्रियमाप्नुयात् ॥ मध्यरात्रे जले स्थित्वा सप्तवारं पठेद्यदि ॥ १५ ॥ क्षयापस्मारकुष्ठादितापत्रयनिवारणम् ॥ आर्किवारेऽश्वत्थमूले स्थित्वा पठति यः पुमान् ॥ १६ ॥ अचलां श्रियमाप्नोति संग्रामे विजयी भवेत् ॥ १७ ॥ यः करे धारयेन्नित्यं स पुमान् श्रियमाप्नुयात् ॥ विवाहे दिव्यकाले च द्यूते राजकुले रणे ॥१८॥ भूतप्रेतमहादुर्गे रणे सागरसंप्लवे ॥ दशवारं पठेद्रात्रौ मिताहारो जितेन्द्रियः ॥१९॥ विजयं लभते लोके मानवेषु नराधिपः ॥ सिंहव्याघ्रभये चोग्रे शरशस्त्रास्त्रपातने ॥ २० ॥ शृंखलाबन्धने चैव काराग्रहणकारणे ॥ कायस्तंभे वह्निदाहे गात्ररोगे च दारुणे ॥ २१ ॥ शोके महारणे चैव ब्रह्मग्रहविनाशने ॥ सर्वदा तु पठेन्नित्य जयमाप्नोत्य संशयम् ॥ २२ ॥ भूर्जे वा वसने रक्ते क्षौमे वा तालपत्रके ॥ त्रिगंधेनाथवा मष्या लिखित्वा धारयेन्नरः ॥ २३ ॥ पंचसप्तत्रिलौहैर्वा गोपितं कवचं शुभम् ॥ गले वा बाहुमूले वा कंठे शिरसि धारितम् ॥ २४ ॥ सर्वान्कामानवाप्नोति सत्यं श्रीरामभाषितम् ॥ २५ ॥ उल्लंघ्य सिंधोः सलिलं स लीलं यः शोकवह्निं जनकात्मजायाः ॥ आदाय तेनैव ददाह लंकां नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम् ॥ २६॥

ॐ हनूमानांजनीसूनुर्वायुपुत्रो महा बलः ॥ रामेष्टः फाल्गुनसखः पिंगाक्षोऽमित विक्रमः ॥ २७ ॥ उदधिक्रमणश्चैव सीताशोकविनाशनः ॥ लक्ष्मणप्राणदाता च दशग्रीवस्य दर्पहा ॥ २८ ॥ द्वादशैतानि नामानि कपीन्द्रस्य महात्मनः ॥ स्वापकाले प्रबोधे च यात्राकाले च यः पठेत् ॥२९॥ तस्य सर्वभयं नास्ति रणे च विजयी भवेत् ॥ ३० ॥

इति